हिमालय का सिद्ध योगी

हिमालय सिद्धियों के दुर्लभ संस्मरण

चिन्तन

जब धरती प्यासी होती है, और उसमें दरारें पड़ने लगती हैं, मेघ को बरसना ही पड़ता है, जब चारों तरफ उमस और गर्मी, तपन और अन्तर्दाह जरूरत से ज्यादा बढ़ जाती है, तब वासन्ती हवा को बहना ही पड़ता है, और इसी प्रकार जब ऋषियों की वाणी दब जाती है, वेदों की ऋचाएं भौतिकता के के नीचे कराहने लगती हैं, तब मुझे बोलना ही पड़ता है, और मेरे बोलने के पीछे इतना ही भाव है।

मैं कोई सिद्ध योगी या विद्वान नहीं हूं, मैं कोई तत्वदर्शी, चिन्तक या महामानव भी नहीं हूं, मैं तो केवल वही बात कहता हूं, जो हमारे ऋषियों ने कही है, मैं तो केवल वही बात दोहराता हूं, जो हमारे उपनिषदों ने उच्चरित की है, मैं केवल उसी बात को सामने दोहरा रहा हूं, जो हमारे शास्त्रों ने बार-बार व्यक्त की है।

शास्त्रों में स्पष्ट रूप से एक ही बात कही है, कि बिन्दु का अपने आप में कोई महत्व नहीं रहता पर छोटी सी बूंद जब बह कर समुद्र में मिलती है, तब वह पूर्णत्व प्राप्त करती है, जगत में खिले हुए गुलाब के पुष्प का कोई मूल्य नहीं है, उसका महत्व तभी है, जब उसकी सुगन्ध मानवता तक पहुंचे, बादल की घुमड़न तब तक व्यर्थ है, जब तक वह मानवता को हल्की-हल्की फुहार से आप्लावित न कर दे, और तब तक मनुष्य भी अधूरा है, जब तक वह आगे बढ़ कर परमतत्व में या ब्रह्म में लीन न हो जाय।

मैं यह नहीं कहता, कि मैं तुम्हें ईश्वर तक पहुंचा दूंगा, मैं यह भी नहीं कहता, कि मैं तुम्हें ब्रह्म से साक्षात्कार करा दूंगा, परन्तु मैं कहता हूं, कि केवल समुद्र के किनारे खड़ा रहने वाला समुद्र को पार नहीं कर सकता, किनारे पर खड़ा व्यक्ति समुद्र की गहराई का आनन्द भी नहीं ले सकता, जो समुद्र में कूदने से घबराता है, और किनारे पर खड़ा-खड़ा ही सोचता रह जाता है, उसके हाथ में कुछ कंकर, कुछ सीपियां और कुछ बालू के कण ही हाथ लगते हैं, पर जो समुद्र के बीच में कूदने की हिम्मत रखते हैं, जो चुनौतियों को झेल कर समुद्र में कूदने की सामर्थ्य रखते हैं, उनके हाथ निश्चय ही मोतियों से भरे होते हैं।

इसके लिए एक चुनौती का भाव होना चाहिए इसके लिए मन में एक चैलेन्ज की क्षमता होनी चाहिए, इसके लिए आंखों में तेज और आगे बढ़ने का हौसला होना चाहिए और मैं तुम्हें वह हौसला, वह हिम्मत वह साहस देने के लिए ही आवाज दे रहा हूं, मैं तुम्हें बार-बार यही कह रहा हूं कि किनारे खड़े रहने से समाप्त हो जाओगे, तुम ही नहीं, तुम्हारी कई पीढ़ियां किनारे पर खड़े-खड़े ही समाप्त हो गईं, और उनके हाथ कुछ नहीं लगा, थोड़े से रुपये पैसे, थोड़े से कपड़े लत्ते, दो चार संतान, बेटे-बेटियां, दुःख और चिन्ता, परेशानियां और

हिमालय का सिद्ध योगी

डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली

प्रकाशक
मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान प्रकाशन
जोधपुर

प्रकाशक : मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान
जोधपुर

● भाव, भाषा, छन्द, भाव संयोजन—योगेन्द्र निर्मोही

• तथ्य •

शब्द ब्रह्म है, और वेदों से लगाकर आज तक सभी योगियों ऋषियों महर्षियों और संतों ने उन्हीं शब्दों का प्रयोग अपने-अपने तरीके से किया है, जिन शब्दों का प्रयोग वेदों और उपनिषदों में किया गया है, उन्हीं शब्दों का प्रयोग मीरा, कबीर, तुलसी, और रैदास ने भी किया है, क्योंकि शब्द तो शाश्वत है।

और मैंने भी इस पुस्तक में उन्हीं शब्दों का आश्रय लिया है, और मैं इसके लिए सभी ज्ञात अज्ञात संतों, महर्षियों, योगियों का आभारी हूं, फिर भी यदि किसी भी व्यक्ति या महापुरुष के शब्दों और भावों से पुस्तक में वर्णित शब्दों और भावों का साम्य दिखाई दे, या अनुभव होने लगे तो यह एक संयोग है, मैं उन सभी ज्ञात अज्ञात महापुरुषों के शब्दों का, उनके भावों का और उनके विचारों का ऋणी हूं, क्योंकि उन सभी के साहित्य और भावों का मेरे चित्त पर गहरा असर रहा है।

इतना होने पर भी आपत्ति आलोचना या वाद-विवाद की स्थिति में केवल मात्र जोधपुर न्यायालय ही मान्य होगा।

मूल्य – पन्द्रह रुपये

प्राक्कथन

पूज्य गुरुदेव वर्तमान युग में "देवदूत" हैं, देवदूत ही नहीं यदि मैं कहूं कि ब्रह्मत्व हैं, यद्यपि शास्त्रों में ब्रह्म को अजन्मा, निराकार और निर्विकार कहा है, परन्तु यदि ब्रह्म को देह का आवरण दे दिया जाय, तो वे सही अर्थों में श्रीमाली जी ही होंगे।

वे बहुत कम बोलते हैं या यह कहूं कि लगभग लिखते ही नहीं, वे अपने विचारों को शब्दों के माध्यम से, प्रवचनों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं, और यह मेरा सौभाग्य, है कि मैंने उनके व्यक्त और अव्यक्त भावों को वाणी दी है, भाषा दी है, छन्द संयोजन और मुखरता प्रदान की है, पर मैं हूं ही कौन? विशाल जलधि के सामने एक बूंद की बिसात हो भी क्या सकती है? उनके पास विचारों का अटूट खजाना है और जब वे किसी विषय पर बोलते हैं, तो अनवरत रूप से बोलते ही चले जाते हैं, परन्तु उस पूरे प्रवचन में वे एक क्षण के लिए भी लीक से अलग नहीं हटते, मिले-जुले शब्दों में गहरी से गहरी बात को पूर्णता के साथ कह देने की कला केवल गुरुदेव में ही है।

आश्चर्य होता है कि हमारे साहित्य में सैंकड़ों वेद, उपनिषद, शास्त्र, पुराण आदि हैं, पर ऐसा लगता है, कि जैसे उन्हें ये शब्द कंठस्थ हों, मनुष्य के लिए सब कुछ कंठस्थ होना संभव नहीं, मनुष्य की बिसात नहीं कि वह ज्ञान के इस समुद्र को हृदय में उंडेल सके, यह तो किसी महामानव के बस की ही बात हो सकती है, यह तो किसी अद्वितीय युग पुरुष की बात ही हो सकती है, और यदि मैं उन्हें "युग पुरुष" कहूं तो शायद युग पुरुष शब्द भी उनके लिए बौना सा ही अनुभव होगा।

उन्होंने शास्त्रों से संबंधित जितने भी विषय हो सकते हैं, उन सभी विषयों को एक नवीन अर्थवत्ता दी है, एक नवीन गरिमा दी है, एक नवीन चेतना और प्राण दिये हैं, उस शास्त्र को ज्यों का त्यों रूखे शब्दों में बांध कर उन्हें नहीं रखा।

अब तक शास्त्र, मर्यादा के कठघरे में बन्द हो कर सड़ रहा था, एक जगह पड़ा-पड़ा पानी बदबू देने लगता है, उसमें सड़ाध पैदा हो जाती है और हमारे शास्त्रों के बारे में कुछ ऐसा ही हुआ, वह कुछ लोगों के पास सिमिट कर रह गया, उन लोगों में भी किसी प्रकार की कोई चेतना या ज्ञान की गरिमा नहीं थी, उन्होंने तो जो कुछ पढ़ा. तोते

की तरह रट कर उसे वापिस उगल दिया, और यह ज्ञान जन साधारण से कट गया, जन सामान्य उस ज्ञान को समझने में असमर्थ रहा, वह ज्ञान जन साधारण के परे की चीज हो गई।

पर श्रीमाली जी ने पहली बार उस ज्ञान को प्राण दिये, एक चेतना दी, उसे धड़कन दी, उसे ऊष्मा और नवीन अर्थवत्ता दी, उसे समाज के प्रत्येक वर्ग से जोड़ने का प्रयास किया, चाहे वह ज्योतिष का क्षेत्र हो, चाहे कर्मकाण्ड, चाहे आयुर्वेद का क्षेत्र हो, चाहे साधना और सिद्धियों का।

उनका लक्ष्य इस ज्ञान में मानवता को भरमाना या भटकाना नहीं था, उन्हें तो सरल भाषा में मानवता को वह रास्ता दिखाना था, जिस पर चल कर वह अपने लक्ष्य तक, अपनी मंजिल तक पहुंच सके, और पूज्य गुरुदेव ने यही सब किया, उन्होंने बड़े-बड़े संस्कृत के श्लोक नहीं बघारे, बड़े-बड़े शास्त्रार्थ के चक्कर में नहीं पड़े, ऊंची-ऊंची पदवियों के भ्रम में नहीं उलझे, उन्होंने कहा यह सब व्यर्थ है, यह सब बेकार है, जब तक हम मानव से मानव की धड़कन को नहीं मिला सकेंगे, जब तक हम मनुष्य को चेतना नहीं दे सकेंगे, तब तक जीवन की न तो सही ढंग से व्याख्या हो सकेगी, और न सही ढंग से शास्त्र को समझा ही जा सकेगा।

उन्होंने कहा कि मैं, प्रेम की भाषा जानता हूं, मैं मानव की धड़कनों की भाषा को पढ़ता हूं, मैं मन की गहराइयों में उठी हुई चेतना को स्पन्दित करने का प्रयास करता हूं, मैं वह सब कुछ कहता हूं, जो मुझे कहना चाहिए, बादल गरज-गरज कर अपनी बात धरती को सुनाकर ही रहते हैं, और मैं भी अपनी बात साधक-साधिकाओं के मन को भली प्रकार से समझा कर ही रहूंगा, स्वच्छ तालाब में प्रकृति कमल विकसित करती है, और मैं भी शिष्यों के कमल विकसित कर रहा हूं, जिनमें जीवन की धड़कन हो, जिनमें पवित्रता हो, जिनमें दिव्यता और चेतना हो।

मैंने प्रयास यह किया है कि सड़ी गली सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार हो, शब्दों के जो अर्थ घिस गये हैं उसे नवीन दृष्टि मिले, समाज के जो मूल्य बदल गये हैं उनको वापिस प्राणश्चेतना मिले और मैं यह सब कुछ कर रहा हूं, क्योंकि मेरे जीवन का लक्ष्य और मेरे जीवन का ध्येय यही है।

हम सब शिष्य अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं, या मैं यों कहूं, कि वर्तमान विश्व का अहोभाग्य है, कि उनके बीच श्रीमाली जी जैसे व्यक्तित्व विद्यमान हैं,

जिन्होंने जीवन को प्राणों को, और चेतना को नये आयाम दिये, इस प्रकार का व्यक्तित्व बार-बार जन्म नहीं लेता, कई सदियां बीतने के बाद ही ऐसा युग पुरुष, ऐसा व्यक्तित्व समाज में उभर कर सामने आता है, जिसकी वाणी में ओज होता है, जिसकी वाणी में चेतना होती है, जिसकी बात में नवीनता होती है, और जो दमखम के साथ, पूर्ण अधिकार के साथ अपनी बात को शिष्यों के गले में उतारने का प्रयास करता है।

गुरुदेव कहते हैं, कि मैंने कमल के बीज बोये हैं और कल ये कमल विकसित हो कर चारों तरफ सुरभि बिखेरेंगे, मैंने गुलाब के फूलों को पूरे भारतवर्ष में बिखेर दिया है, गुलाब के बीजों को मिट्टी में बोने का सफल प्रयास किया है, और निश्चय ही कल इसी मिट्टी से नई टहनियां विकसित होंगी, और उस पर गुलाब के सुन्दर पुष्प विकसित होंगे जिससे मानवता गौरवान्वित होगी, जिससे यह विश्व एक सुन्दर बगीचे के रूप में सुगन्ध चारों तरफ फैलायेगा, जिससे युद्ध के बादल बिखरेंगे, नफरत की आग बुझेगी, प्रेम की शीतल बयार बहेगी, आनन्द की हल्की-हल्की फुहार चारों तरफ गिरेगी और लोग उसे अनुभव कर प्रफुल्लित हो सकेंगे, आनन्दित हो सकेंगे, उनके मुरझाये हुए चेहरों पर एक दमक पैदा हो सकेगी।

मुझे सिद्धाश्रम के एक योगी ने दो टूक शब्दों में बताया था, कि यह विश्व का दुर्भाग्य है, कि वह श्रीमाली जी को भली प्रकार से पहिचान नहीं पा रहा है, और समाज ने विद्यमान महापुरुषों को कब पहिचाना ? राम को अपने जीवन काल में वन-वन भटकना पड़ा, श्रीकृष्ण को जितना अपमान और लांछन अपने जीवन काल में झेलने पड़े, वे अवर्णनीय हैं, राधा को गली-गली में बदनाम किया गया, मीरा को सांप का पिटारा भेज कर उसे मारने का षड़यन्त्र किया गया, ईशा को सूली पर चढ़ा दिया गया, और सुकरात को जहर का प्याला पीने के लिए मजबूर कर दिया गया।

क्योंकि हमारा समाज बौना है, क्योंकि हमारा समाज बहुत छोटे से कठघरे में कैद है, क्योंकि हमारा समाज संकीर्णता से बाहर निकल नहीं सका है, और इसीलिए जब तक राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्तित्व पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, उन्हें गालियां दी जाती है, उन्हें प्रताड़ित किया जाता है, उन पर झूठे लांछन लगाये जाते हैं, उन्हें घूंट-घूंट जहर पीना पड़ता है, और उन्हें हर क्षण अपमान, विरोध, बदनामी और आलोचनाओं के तीर अपने शरीर और मन पर झेलने

पड़ते हैं, और इन महापुरुषों के साथ भी यही हुआ, बुद्ध को लाठियों से पीटकर नदी में फेंक दिया गया, महावीर के कानों में कीलें ठोंक दी गई, हमारे नपुंसक समाज ने सभी महापुरुषों के साथ यही किया।

यह अलग बात है, कि इन महापुरुषों के जाने के बाद मानवता पछताती है, हाथ मलती है, उनके लिए देवालय बनाती है, उनके 'स्टेच्यू' खड़े करती है, उनकी आरती उतारी जाती है, परन्तु दुर्भाग्य यह होता है, कि उस समय वह व्यक्तित्व सामने नहीं होता, दुर्भाग्य यह होता है, कि उस समय वह जीवित जाग्रत व्यक्तित्व हमारे सामने नहीं होता।

और ऐसी स्थिति पूज्य गुरूदेव श्रीमाली जी के साथ भी हो रही है, वे तिल-तिल करके निरन्तर जल रहे हैं, परन्तु फिर भी अग्नि के बीच, आपत्तियों और आलोचनाओं के धधकते अंगारों के बीच बैठे मुस्कराते रहते हैं, आलोचनाओं के निरन्तर पत्थर उन पर फेंके जाते हैं, और वे प्रत्येक पत्थर को फूल समझ कर सिर से लगाते हैं, और फेंकने वाले की नादानी पर तरस खा कर रह जाते हैं, उन्हें घूंट-घूंट समाज का जहर पीने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है, परन्तु फिर भी उनके चेहरे पर कोई मलाल नहीं, पूछने पर वे यही उत्तर देते हैं कि ये अभी नादान हैं, मेरा मूल्य और महत्व नहीं जानते, परन्तु जिस दिन मैं इस दुनियां से विदा ले लूंगा, उस दिन इनके पास पछताने के अलावा कुछ भी नहीं रहेगा, उस दिन इनके पास हाथ मलने के अलावा और कोई चारा नहीं रहेगा, उस दिन बाकी सब कुछ तो रहेगा, परन्तु यह जीवित जाग्रत व्यक्तित्व हमारे बीच नहीं होगा, और निश्चय ही आने वाली पीढ़ी, आने वाली मानवता हम लोगों को धिक्कारेगी, हम लोगों के चेहरे पर थूकेगी, हम लोगों की अज्ञानता पर हाथ मल कर पछताते हुए कहेगी, कि एक अद्वितीय युग पुरुष तुम्हारी पीढ़ी के बीच था और तुम उससे कुछ भी लाभ नहीं उठा सके, एक अमृतत्व और अद्वितीय हीरा तुम्हारी हथेली पर रखा था और तुमने उसे कंकर जितना भी महत्व नहीं दिया, यह हमारी पीढ़ी का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? और आने वाली पीढ़ी को उत्तर देने के लिए हमारे पास कौन से शब्द हैं?

सिद्धाश्रम के उस अद्वितीय योगी ने ठीक ही कहा था, कि आज से पांच हजार वर्ष पूर्व जब पृथ्वी पर जरूरत से ज्यादा भौतिकता छा गई

थी, तब श्रीकृष्ण ने जन्म ले कर उस भौतिकता के बीच गीता के चिन्तन के द्वारा समाज को एक नई दिशा दृष्टि दी, और साधना के माध्यम से श्रीकृष्ण ने भारत की प्राचीन विद्याओं को पुनर्जीवित किया।

और उसी आत्मा ने ठीक २५०० वर्ष बाद बुद्ध के रूप में जन्म लिया और "ध्यान योग" के माध्यम से उन्होंने घोर भौतिकता के बीच आध्यात्मिकता की एक नई किरण समाज में बिखेरी, त्रस्त समाज को एक नई दिशा दृष्टि दी, एक नई चेतना दी, एक नया रास्ता दिखाया, एक नवीन प्रकार से पथ प्रदर्शन किया।

और बुद्ध के बाद आज फिर पूरे २५०० वर्ष हो गये, फिर उसी आत्मा ने गुरुदेव के रूप में जन्म लिया है, इस समय विश्व युद्ध के कगार पर खड़ा हुआ है, चारों तरफ भौतिकता फैल गई है, स्वार्थ, छल, झूठ, कपट और असत्य का साम्राज्य बहुत अधिक बढ़ गया है, और इसके नीचे भारत के ऋषियों की आत्माएं दब कर कराह रही हैं, भौतिकता के अन्धकार के नीचे शास्त्र लुप्त हो गये हैं, ज्ञान की चेतना समाप्त हो गई है, और आधुनिक पीढ़ी दिशाशून्य सी इधर-उधर भटक रही है।

और ऐसे समय में फिर एक व्यक्तित्व ने जन्म लिया है, जिसने पूर्वजों के ज्ञान को नवीन चिन्तन दिया है, लुप्त होती हुई साधनाओं को पुनर्जीवित किया है, कराहती हुई मानवता के घावों पर प्रेम का मलहम लगाया है, और दो टूक शब्दों में कहा है,—**"तुम्हें भटकने की जरूरत नहीं है, तुम्हें परेशान होने की भी जरूरत नहीं है, तुम्हें और कुछ नहीं करना है, तुम्हें तो प्रसन्न रहना है, मुस्कराते हुए खिलखिलाते रहना है, इस घोर अंधेरे में तुम केवल इतना ही काम करो कि मेरा हाथ पकड़ लो, तुम केवल इतना ही करो कि मेरे पांव से पांव बढ़ा कर मेरे साथ आगे बढ़ो, तुम्हें और कुछ नहीं करना है, मैं निश्चय ही तुम्हें पूर्णता तक पहुंचा दूंगा, मैं निश्चय ही तुम्हें ब्रह्मत्व से मिला दूंगा, मैं निश्चय ही बूंद को समुद्र में विसर्जित कर दूंगा।"**

वास्तव में ही यह एक नया संदेश है, वास्तव में ही श्रीमाली जी अद्वितीय मेधावी और सही अर्थों में युग पुरुष हैं, जिनके पूरे शरीर से देवतुल्य पद्मगंध सी निसृत होती रहती है, जिनकी वाणी में साक्षात सरस्वती पूर्णता के साथ

बैठी हुई हैं, जिनका हृदय भारत के समस्त शास्त्रों का अथाह भण्डार है, वे जब बोलते हैं, तो बराबर अजस्त्र प्रबाध गति से बोलते ही चले जाते हैं, और उनका प्रत्येक शब्द, एक नवीन चेतना लिये हुए होता है, उनका स्पर्श पाकर शिष्य और शिष्याएं धन्य हो उठती हैं, उनसे मिलने के लिये, उनके दर्शनों के लिये बेतहासा दौड़े चले आते हैं, और जब उनके पास पहुंचते हैं, तो ऐसा लगता है, कि जैसे शीतल छाया में आ गए हों, उनके पास बैठने से सारा दुःख-दर्द, तनाव, चिन्ता और परेशानी अपने आप मिट जाती है, शरीर में उमंग और जोश, उत्साह और उछाह की लहरें, हिलोरें लेने लगती हैं, उनके पास क्षण भर बैठना भी जीवन का सौभाग्य होता है, आने वाली पीढ़ियां हम पर, हम सभी शिष्यों और साधकों पर गर्व के साथ-साथ आश्चर्य करेंगी, कि हम श्रीमाली जी के साथ कुछ दिनों तक रहे हैं, उनकी वाणी को सुना है, उनके प्राणों से एकाकार हुए हैं।

श्रीमाली जी नहीं के बराबर लिखते हैं, कार्यालय में निरन्तर पत्र आते रहते हैं, जिन्हें जिज्ञासाएं होती हैं और इन पत्रों के उत्तर इस पुस्तक में दिये हैं, जिससे कि अधिक से अधिक साधकों की समस्याओं का समाधान हो सके। गुरुदेव तो अधिकतर मौन रहते हैं, और मैंने उनके मौन को गति दी है, शब्द दिये हैं, भाव और भाषा दी है, पुस्तक पर पूज्य श्रीमाली जी का नाम तो आदर के लिए दिया है बाकी पुस्तक के छन्द, भाव, भाषा, उनकी मौन की ज्योत्स्ना मेरे द्वारा मुखरित हुई है जिन्हें मैंने लिपिवद्ध किया है।

मुझ पर कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रैदास, ओसो, रमण और अन्य कई युग पुरुषों के शब्दों और साहित्य का प्रभाव पड़ा है, हो सकता है पुस्तक में कहीं-कहीं पर उनके शब्दों या भावों का संयोजन दिखाई दे जाय, तो इसके लिए मैं इन सब के प्रति आभारी हूं।

और मैं युगपुरुष पूज्य गुरुदेव के प्रति नमन करता हुआ, मेरा रोम-रोम उनके प्रति ऋणी है, और आशीर्वाद का आकांक्षी है, और हम हजारों लाखों शिष्य शिष्याओं की प्रार्थना है, कि वे इसी प्रकार हमें अमृत के घूंट पिलाते हुए पथ प्रदर्शन करते रहें।

—योगेन्द्र निर्मोही

गुरू

● **प्रभुवर ! गुरू किसे कहते हैं ?**

– गुरू तो एक प्रेम है, एक श्रद्धा है पूर्ण रूप से नमन होने की क्रिया है ।

– गुरू एक प्रेम का जीवन्त स्वरूप है, जिसे बांहों में बांधा जा सकता है, एहसास किया जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है ।

– गुरू तो एक सुगन्ध का झोंका है, जिसे पूरे शरीर में रचा-पचा सकते हैं, और हम अपूर्व मादकता से उन्मत्त हो सकते हैं, धरती से ऊपर उठ कर जीवन के वास्तविक स्वरूप को पहिचान सकते हैं ।

– गुरू तो एक ईश्वर का प्रतिबिम्ब है, जिसे तुम साकार अपनी आंखों के सामने देख सकते हो, ईश्वर को तुमने भले ही न देखा हो, पर गुरू के माध्यम से ईश्वर को चीन्ह सकते हो ।

– और गुरू एक क्रिया है समर्पण की, जो तुम देख कर सीख सकते हो, पूर्ण रूप से उन्मुक्त होने की क्रिया, उसमें विसर्जित होने की क्रिया, पूरी तरह से डूब कर एकाकार हो जाने की क्रिया ।

– और एकाकार होने की क्रिया ही तुम्हें ईश्वर तक पहुंचा सकती है, तुम्हारे "अहं" को गला कर उस विराटता में निमग्न कर सकती है, जिसे तुम "ब्रह्म" कहते हो, जिसे तुम "धर्म" कहते हो, जिसे तुम "परब्रह्म" "ईश्वर" और "सर्वोच्च सत्ता" कहते हो ।

– और इसीलिए तो गुरू को जीवन का लक्ष्य, जीवन का ध्येय और "जीवन का सर्वस्व" कहा है ।

—●—

गुरू और शिष्य

● प्रभु ! गुरू और शिष्य का परस्पर क्या सम्बन्ध है ?

– गुरू और शिष्य तो आकाश के दो छोर हैं, जिसके बीच समस्त ब्रह्माण्ड रचा-पचा है ।

– और जब शिष्य चल कर गुरू से एकाकार होता है, तो सारा ब्रह्माण्ड शिष्य के पैरों तले होता है, वह उस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की झलक गुरू में देख कर विस्मय विमुग्ध हो उठता है ।

– गुरू और शिष्य तो धरती और आकाश का मिलन है, जहां शिष्य धरती पर खड़ा होकर उस आकाश में ईश्वर के दर्शन कर अपने को धन्य-धन्य कर डालता है, स्व का आत्मा से, जीव का ब्रह्म से और अचैतन्य का चैतन्य से पूर्ण मिलन है ।

– गुरू तो पूर्ण ईश्वर है, जिसे तुम समर्पण की खिड़की से झांक कर देख सकते हो, वही तो प्रेम का वास्तविक स्वरूप है, जिसे तुम दिल के दरवाजों से अपने भीतर प्रवेश दे सकते हो, सादर बिठा सकते हो, और अपने में एकाकार कर सकते हो ।

– गुरू तो एक मस्त मादक फुहार है, जिसमें भीग कर शिष्य आनन्द से सराबोर हो सकता है, अपने आप को प्यार में, मस्ती में, मादक तरंग में, पूरी तरह से भिगो कर उस पर विराटता के दर्शन कर सकता है, जो उसके जीवन का आनन्द है ।

– और गुरू से एकाकार हो जाना, उसकी कृपा-फुहार में भीग जाना ही विराट सत्ता को प्राप्त कर लेना है, ब्रह्मानन्द में एकाकार हो जाना है, अपने आप को सम्पूर्णता में समाहित कर लेना है ।

गुरूदेव : दृष्टि

● **कभी-कभी आप में विराटता के दर्शन होते हैं, पर कभी आप अत्यन्त सामान्य मानव प्रतीत होने लगते हैं, ऐसा क्यों होता है प्रभु !**

– अगर प्रेम का वास्तविक स्वरूप देखना चाहते हो, तो वह तुम्हें केवल गुरू में ही दिखाई देगा, क्योंकि अन्य सभी के साथ तुम्हारा प्रेम नहीं होता, प्रेम में लिपटी हुई वासना होती है।

– और अगर तुम्हें विराटता के दर्शन करने हैं, तो भी वह विराटता केवल गुरू में ही दिखाई देगी, पर उसके लिए तुम्हें नीचे झुकना पड़ेगा, नमन होना पड़ेगा, नतमस्तक होना पड़ेगा, समर्पित होना पड़ेगा।

– पर हर वार तुम्हें गुरू में विराटता दिखाई नहीं देगी, उनकी उच्चता, श्रेष्ठता और अद्वितीयता भी दृष्टिगोचर नहीं होगी, क्योंकि तुम क्षुद्रता, ओछेपन और निम्नता की पथरीली जमीन पर खड़े हो कर देखने की कोशिश कर रहे हो, जब तुम निचाई से, स्वार्थ से, मांगने की इच्छा से उन्हें देखोगे, तो वह गुरू भी तुम्हें सामान्य ही दिखाई देगा।

– पर जब तुम निःस्वार्थ भाव से, बिना किसी स्वार्थ के, बिना किसी मांगने के भाव से, उसे देखने का प्रयत्न करोगे, तो निश्चय ही उनमें तुम्हें विराटता के दर्शन होंगे, साक्षात् देवत्व दिखाई देगा, और तुम धन्य-धन्य हो उठोगे।

– गुरू की विराटता के दर्शन तुम नमित हो कर, झुक कर, विनीत हो कर ही कर सकते हो, क्योंकि उस 'अहं' की ऊंचाई पर खड़े हो कर तो तुम अपना ही प्रतिविम्ब उनमें देख पाओगे, अपनी ही क्षुद्रता, अपना ही ओछापन, अपने ही अहं का प्रतिविम्ब तुम्हें दिखाई देगा।

– इसीलिए जब तुम अपने "अहं" को गला कर, नम्र होकर देखते हो तो, वह विराटता दिखाई दे जाती है, पर जब स्वार्थ, छल, दम्भ और अहं की आंख से देखने का प्रयत्न करते हो, तो तुम्हें उनमें "गुरू" नहीं अपना ही क्षुद्र प्रतिविम्ब दिखाई देने लगता है।

प्रेम

● **मैं आपके प्रति अत्यन्त निकटता सामीप्यता अनुभव करता हूं, क्या यह आपके प्रति मेरा प्रेम है ?**

– संसार का सबसे बेशकीमती, आनन्द युक्त और अनिवर्चनीय शब्द है, "प्रेम"

– क्योंकि यही शब्द है जो हजारों-हजारों वर्षों से जीवित है, और लाखों लाखों वर्षों तक जीवित रहेगा, अन्य शब्द तो बने और मिट गये, गढ़े गये और घिस गये, पर यह शब्द मूल रूप में जैसा था, आज भी वैसा ही है, ऊष्मा युक्त, गरमाहट से भरा हुआ, जोश, आनन्द और मस्ती से छलकता हुआ ।

– और जब हृदय में प्रेम का अंकुर फूट जाता है, तो विशाल दुनिया छोटे से घेरे में सिमट जाती है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रियतम की आंखों में केन्द्रित हो जाता है, और बाकी सब कुछ बेमानी हो जाता है, धन, दौलत, पति-पत्नी, ऐश आराम ठोकर में उड़ाने लायक हो जाते हैं ।

– क्योंकि प्रेम मरता नहीं, शरीर तो आता है, और एक दिन श्मशान में जाकर सो जाता है, पर प्रेम .... प्रेम तो अक्षुण्ण रहता है, जीवित रहता है, जाग्रत रहता है, युगों युगों तक धड़कता हुआ, चेतन युक्त बना रहता है ।

– इसीलिए तो गुरू देखने की चीज नहीं, प्रेम करने का आधार है, दोनों भुजाओं में भर कर सीने से भींच लेने की क्रिया है, अपने दिल में पूरी तरह से उतार देने का अवसर हैं, क्योंकि वह प्रेम की तरह ही मृत्यु से परे है, शाश्वत है, अजर-अमर है ।

– और इस प्रेम के रास्ते से ही गुरू को अपने हृदय में उतारा जा सकता है, खून के रेशे-रेशे में मिलाया जा सकता है, अपनी धड़कनों में स्पंदन दिया जा सकता है, और जीवन का संगीत, जीवन की लय और जीवन का माधुर्य सुना जा सकता है ।

—●—

गुरू और प्रेम

● मैं जब भी आपको देखने की कोशिश करती हूं, तो आंखों में आंसू झिलमिला आते हैं, और जी भर कर देख नहीं पाती .... क्या करूं ?

– अगर तुमने प्रेम को नहीं जाना तो फिर तुमने गुरू को भी नहीं जाना, क्योंकि गुरू को प्रेम के छन्दों से ही पढ़ा जा सकता है, क्योंकि गुरू को दिल की धड़कनों से ही पहिचाना जा सकता है ।

– और जो तुम मुझे देख रही हो, वह तो मात्र एक प्रतिशत गुरू का अस्तित्व है, बाकी निन्यानबे प्रतिशत तो तुम्हारे हृदय के भीतर है, जिसे झुक कर ही देखा जा सकता है, नमित होकर ही पहिचाना जा सकता है, धड़कनों के खड़ताल के बीच ही समझा जा सकता है ।

– और याद रखो, कि दिल में छटपटाहट उठे, तो समझना कि तुमने गुरू को देखने की नजर पा ली, जब आंखों की कोरें भीगने लगें, तब समझना, कि तुमने थोड़ा-थोड़ा गुरू को पहिचानना शुरू कर दिया है, जब आंखों पर से बह कर आंसू गालों पर लुढ़कने लगें, तब समझ लेना कि तुमने गुरू के दर्शन कर लिए ।

– क्योंकि गुरू तो तुम्हारे भीतर ही है. जिसे उच्छ्वास, बेचैनी, तड़फ, छटपटाहट और आंसुओं की भाषा से ही पढ़ सकती हो, समझ सकती हो, दिल में संभाल कर रख सकती हो ।

– और जिस दिन तड़फ में, आंसुओं की झिलमिलाहट में निहारोगी, तो तुम्हें गुरू सामने ही मंद-मंद मुस्कराते हुए साफ-साफ दिखाई दे जायेंगे ।

प्रेम-एक अहसास

- **गुरू से प्रेम किस प्रकार से किया जा सकता है, क्या कोई इसकी सरल विधि है ? मैं आपसे प्रेम कैसे करूं ?**

– तुमने पूछा है, कि मैं गुरू से प्रेम कैसे करूं ?

– प्रेम करना कोई क्रिया नहीं है, यह तो एक सहज स्वाभाविक नैसर्गिक वरदान हैं, प्रभु का मानव को, आप सब को ।

– और जो पत्थर है, धन के पीछे पागल है, स्वार्थ की चादर से मुंह ढंके हुए हैं, उन्हें यह वरदान प्राप्त नहीं हो सका है, प्रभु ने उसे हाड़ मांस का शरीर तो दिया है, पर जो वरदान देना था, उससे, उसे वंचित कर दिया है, और विना प्रेम के वह चलते फिरते मुरदे की तरह वन कर रह गया है ।

– और जो प्रेम के वरदान से वंचित रह गया, वह जीते जी लाश की तरह ही है, जो अपने कन्धों पर अपनी ही लाश ढोता हुआ पल-प्रति-पल श्मशान की ओर बढ़ता हुआ चला जा रहा है ।

– प्रेम तो आनन्द की फुहार है, जिसके तले भीग कर, सारे शरीर में पुलक, रोमांच और सिहरन भरी जा सकती है ।

– सांझ को कौन सिखाता है, कि वह रात के गले में वांहे डाल कर प्यार करे, सुवह को कौन समझाता है, कि सूर्य को भुजाओं में भर कर चूम ले, हवा को कौन सिखाता है, कि वह सुगन्ध को अपने पूरे शरीर में रचा पचा ले, भ्रमर को कौन बताता है, कि फूलों से लिपट कर उससे एकाकार हो जाय, वांहों में भर कर मस्त हो जाय, और अपने होठों पर प्रेम की गुनगुनाहट विखेर दे ।

– और तुम्हें कौन सिखाये, कि प्रेभ कैसे किया जाय, धड़कनों में गुरू को उतारना है, और आंखें वन्द कर देनी है, ... तव तुम्हें अपने आप समझ आ जायेगी, कि प्रेम कैसे किया जाता है ।

—●—

आपको कहां ढूंढ़ूं, कैसे ढूंढ़ूं

● **आपके बिना एक क्षण भी काटना कठिन हो गया है, बावरी हो गई हूं मैं, आपको कहां ढूंढ़ूं, कैसे पाऊं आपको ?**

– तुम पागल हो गई हो क्या, कि पूछ रही हो मैं कहां हूं, कहां ढूंढ़ूं।

– मैं तो तुम्हारे पास हूं बिल्कुल पास, इतना पास कि तुम्हारे और मेरे बीच में हवा भर भी रिक्तता, खालीपन "गैप" नहीं रह गया है।

– जरा सा नीचे झुक कर तो देख, तुम्हारी प्रत्येक धड़कन में मैं स्पंदित हो रहा हूं।

– दुःख के घटाटोप अन्धकार में थोड़ा सा भी अपना हाथ आगे बढ़ा कर तो देख, मेरा बढ़ा हुआ हाथ तुम्हें तैयार मिलेगा, और वह तुम्हें गहन अन्धकार से बाहिर निकाल ले जायेगा।

– ढूंढ़ा तो उसे जाता है जो दूर होता है ढूंढ़ा तो उसको जाता है, जो अपरिचित होता है, ढूंढ़ा तो उसे जाता है, जिस पर विश्वास नहीं होता।

– फिर मैं तो तुम्हारा ही हूं, तुम्हारी धड़कनों का ही तो स्पन्दन हूं, तुम्हारे हृदय की ही तो सुवास हूं, तुम्हारे आंसुओं की ही तो भाषा हूं, फिर मुझे ढूंढ़ने की जरूरत ही कहां पड़ी है।

– मुझे वसन्त की सुवास में ढूंढ़ना होगा, मैं वहां मिल जाऊंगा, हवा की पुरवाई में ढूंढ़ना, मैं तुम्हें दिखाई दे जाऊंगा. लहरों की छलछलाहट में झांकना, मैं साफ-साफ दृष्टिगोचर हो जाऊंगा, आंसुओं को बड़ी-बड़ी बूंदों में निहारना, मेरा अक्श साफ-साफ दिखाई दे जायेगा।

– क्योंकि मैं तुमसे एकाकार हूं, तुम्हारी धड़कनों में हूं, तुम्हारे प्राणों का अंश हूं, क्योंकि मैं तुम्हारा ही तो गुरू हूं।

–●–

विरह

● जब मैं आपके सामने होती हूं, तो आनन्द से नृत्य करती रहती हूं, पर अलग होते ही फड़कने लग जाती हूं. विरह से व्यथित हो जाती हूं,....क्यों....क्यों ?

– यह विश्व का सबसे अहोभाग, सबसे सुन्दर और सबसे ज्यादा मधुर शब्द है, क्योंकि इस शब्द ने ही "आत्मा" को परमात्मा से मिलने का रास्ता प्रशस्त किया है।

– और तुमने पूछा है, कि जब तुम्हें ख्यालों में ही सही, एक क्षण के लिए देखती हूं तो पुलकित हो उठती हूं, पर दूसरे ही क्षण तुम अदृश्य हो जाते हो और मैं विरह में छटपटा कर रह जाती हूं।

– और यह छटपटाहट, यह वेदना ही इस तथ्य का साक्षीभूत है, कि तुम्हारा हृदय निर्मल होने लगा है, उसके ऊपर जमी हुई स्वार्थ की गर्द हटने लगी है, और जब हृदय निर्मल और स्वच्छ हो जाता है, तो मुझे देख लेती हो, पर दूसरे ही क्षण जब चित्त पर संशय की हलकी सी भी धूल छा जाती है, तो तुम बेचैन हो उठती हो।

– और यह संकेत है, कि तुम अपने हृदय पर स्वार्थ की, छल की, संदेह की धूल न जमने दो, फिर मैं चित्त से हट नहीं सकूंगा।

– पर विरह भी तो जीवन का सौन्दर्य है, प्रेम का आधार है, स्नेह का मुखरित स्वरूप है।

– देखा नहीं मछली के विरह को, कि पानी से अलग होते ही छटपटा कर प्राण त्याग देती है, देखा नहीं चकोरी को, कि चकोर से अलग होते ही पत्थर पर सिर पटक कर समाप्त हो जाती है, देखा नहीं कुरंगी को, कि कुरंग के ओझल होते ही आकाश में पंख समेट कर धड़ाम से पथरीली धरती पर गिर कर समाप्त हो जाती है, क्योंकि उन्होंने "विरह" को पढ़ा है, अपने में संजोया है।

– और मैं चाहता हूं कि तुम भी मछली की तरह, चकोरी की तरह, कुरंगी की तरह "विरह" का पाठ पूर्णता के साथ पढ़ सको, जिससे कि तुम अपने प्रियतम "ब्रह्म" के प्राणों से एकाकार हो सको।

—●—

मिलन

● **मैं आपसे मिल कर, पूरी तरह से आप में डूब जाना चाहता हूं, मैं आपसे मिले बिना रह नहीं पा रहा हूं, कैसे मिलूं क्या करूं ?**

– एक सम्पूर्ण विश्व का स्वप्न, मानव जीवन की सर्वोच्चता, जब आत्मा का पूर्णता के साथ परमात्मा से मिलन हो जाता है, तभी सामान्य शिष्य गुरू से एकाकार हो पाता है।

– पर मिलन के गर्भ में विरह है, विरह की अग्नि में तप कर यह मिलन निखरता है, वियोग की धूप में झुलस कर यह मिलन साकार होता है, "स्व" के अस्तित्व के विसर्जन पर ही यह मिलन मुस्कराने की क्षमता प्राप्त करता है।

– इसके मूल में तो वेग है, छटपटाहट है, वेदना है, विछोह है, आंसुओं का प्रवाह है, उच्छवास और आह की पगडंडी है, जिस पर चल कर धीरे-धीरे यह मिलन आता है।

– इसलिए इसे पाने के लिए त्वरा चाहिए, वेग और छटपटाहट चाहिए, सीने से उठी हुई सिसकारी चाहिए, तभी तो गुरू से मिलन हो सकेगा, तभी तो तुम उनके चरणों में आंसुओं का अर्घ्य समर्पित कर सकोगे, तभी तो तुम छटपटाहट से भरा हुआ दिल गुरू के चरणों में भेंट चढ़ा सकोगे, तभी तो तुम सिसकारियों के संगीत में गुरू का गीत मुखरित कर सकोगे।

– तभी तुम एकाकार हो सकोगे, तभी तुम गुरू की धड़कनों में समा सकोगे, तभी तुम्हारा गुरू से पूर्णता के साथ मिलन हो सकेगा, आनंदयुक्त, मस्ती भरा, छलकता हुआ, तरंगित स्पंदित .... धड़कता हुआ मिलन, विसर्जन-युक्त मिलन, प्रेम से सराबोर मिलन।

गुरू मोरो जीवन प्राण जड़ी

● क्या मैं अपने जीवन में "ब्रह्म" से साक्षात्कार कर सकता हूं ?

– गुरू कोई व्यक्ति नहीं, कोई हाड़-मांस का पुतला नहीं, वह तो प्राणों का नर्तन है, हृदय की धड़कन और जीवन का श्वास है।

– पर जब तुम सामान्य मानव बन कर उसे देखते हो, तो वह तुम्हें सामान्य मनुष्य ही दिखाई देगा, पर जिस दिन तुम इस तुच्छता से ऊपर उठ जाओगे, जिस दिन हाड़-मांस, थूक-लार से निर्मित अपनी काया से ऊपर उठ कर देखने का प्रयत्न करोगे, तब तुम्हें गुरू का वास्तविक स्वरूप दिखाई देगा, तब तुम्हें गुरू की ऊंचाई का बोध होगा, तब तुम्हें गुरू में अन्तर्निहित परब्रह्म के साक्षात् दर्शन हो सकेंगे।

– क्योंकि वह कबीर के शब्दों में "गोविन्द" से भी बढ़ कर है, "गुरू गोविन्द दोऊ खड़े किसके लागूं पाय", और इसीलिए परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता गुरू के पास से ही होकर गुजरता है, बिना गुरू के तुम गोविन्द को पा ही नहीं सकते, तुम "ईश्वर" को "ब्रह्म" को पहिचान ही नहीं सकते, क्योंकि वह तो गुरू के रूप में तुम्हारे सामने खड़ा है, जब तुम उसे ही नहीं पहिचान सकोगे, तो फिर ब्रह्म को कैसे पहिचान सकोगे, फिर तो तुम्हारी ब्रह्म तक की यात्रा झूठी है, व्यर्थ है, बेमानी है।

– गुरू तो हृदय में बहते हुए ब्रह्म की मद भरी धारा है, जिसमें स्नान करके पवित्र होना है, वह तो आनन्द का सरोवर है, जिसमें डूबने से तृप्ति है, आनन्द है, मस्ती है, वह तो जीवन का मूल है, प्राणों को चैतन्य करने की जड़ी है।

– इसीलिए तो साकार गुरू के चरणों में समर्पण ही पूर्णता को प्राप्त करना है, और यह समर्पण ही "ब्रह्म" से साक्षात्कार है, उसमें पूर्ण रूप से विसर्जन है।

दरस बिन दूखरण लागे नैन

● **जब से आपमें निहित 'ब्रह्म' की झलक देखी है, तब से ये आंखें पुनः उसी झलक को देखने के लिए बेताब हैं, व्याकुल हैं, कुछ उपाय बताइये न, गुरुदेव ! मैं क्या करूं ?**

– तुम आधे जग रहे हो, तो आधी वेहोशी में भी हो, तुम्हें पता ही नहीं है कि तुम किधर जा रहे हो, तुम्हारा लक्ष्य क्या है तुम किसे खोज रहे हो?

– पर तुम्हारी आंखों ने सद्गुरू के माध्यम से ईश्वर की एक झलक देख ली है, देख ली है और वह ज्योत्स्नित हो उठी हैं, चमक उठा हैं, आनन्द, उमंग और उछाह से भर उठी हैं।

– पर फिर तुम्हारे मन का सन्देह तुम्हारी आंखों के सामने आ गया है, फिर तुम्हारे मन का छल आंखों के सामने फन फैला कर सर्प की तरह खड़ा हो गया है, कि यह हाड़-मांस से निर्मित गुरू है भी या नहीं, और इस सन्देह ने तुम्हारी आंखों पर "गान्धारी" की तरह पट्टी बांध दी है।

– पर उसने तो एक वार उस झलक को देखा है, आंखों ने तो एक बार इस हाड़-मांस के शरीर के भीतर स्थित उस ज्योति को अनुभव किया है, उसने तो उस आनन्द की लपक में अपने सम्बन्धों को परखा है।

– और अब, जब उन आंखों के सामने सन्देह के बादल घिर आये हैं तो वह सद्गुरु की झलक भी बादलों की ओट में लुप्त हो गई है, और आंखें बेचैन हो गई हैं, उनमें मोती की तरह बड़ी-बड़ी बूंदें लुढ़कने लगी हैं, उस दृश्य को पुनः देखने के लिए तरस गयी हैं, उस घड़ी की बाट जोहते-जोहते दुखने लगी हैं, छटपटाने लगी हैं, व्याकुल, बेचैन और व्यथित होने लगी हैं।

– और बेताब हैं तुम्हारी ये आंखें, उन संदेह के सर्पीले फन को कुचलने के लिए, भ्रम के घटाटोप बादलों को हटाने के लिए, जिससे कि पुनः तुम्हारी आंखें अपने प्यार को, अपने ब्रह्म को, अपने गुरू को, जी भर कर देख सकें, आंखों के रास्ते से अपने हृदय में उतार सकें, और अपनी विरहण आंखों को सुख, तृप्ति और आनन्द का दुलार दे सकें।

रिमझिम-रिमझिम बुंदियां बरसत

- **हर क्षण मेरी आंखों के सामने आपकी ही छवि बनी रहती है, सोचता हूं भाग जाऊं जंगलों में, और आपको पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिये तपस्या करूं, पर रास्ता नहीं सूझता आपको पाने का, कोई सरल सा रास्ता बताइये न !**

– तुम दुखी हो परेशान हो और इस व्यथा से, इस परेशानी से इस दुःख से बचने के लिए पहाड़ों की ओर भाग रहे हो, गंगा में डुबकी लगाने की तैयारी कर रहे हो, जंगल में पशुओं की तरह भटकने के लिए दौड़ रहे हो।

– पर यह गलत रास्ता है, जिस पगडंडी पर तुम बढ़ने की कोशिश कर रहे हो वह गलत है, यह पगडंडी तुम्हें अंधेरी खोह में उलझा देगी यह रास्ता तुम्हें वियाबान जंगलों में भटकने के लिए एकाकी छोड़ देगा और तुम तड़फ-तड़फ कर जान दे दोगे, पर प्राप्त कुछ नहीं कर पाओगे।

– क्योंकि पहाड़ों की तरफ भागना, नदियों में मछलियों की तरह डुबकी लगाना व्यर्थ है, बेमानी है, अपने आपको छलना है, खुद को धोखा देना है, क्योंकि यह रास्ता ही तुमने गलत चुन लिया है।

– क्योंकि जहां तुम शांति की खोज कर रहे हो वह छलावा है, धोखा है, एक सपना है, और जब यह सपना टूट जायगा, तो तुम खुद भी उसके साथ ही साथ टूट जाओगे, बिखर जाओगे, चकनाचूर हो जाओगे।

– तुम्हें लंगोटी लगा कर जंगल की ओर नहीं भागना है, भगवे कपड़े पहिन कर मन पर सौ-सौ पर्दे नहीं डालने हैं, आंखें बंद कर ठूंठ नहीं बन जाना है।

– अपितु सही रास्ता तो यह है कि तुम मेरे पास आओ, मेरे स्नेह की वर्षा में अपने आपको भीगने दो, मेरे प्यार की फुहार में अपने आपको तरंगित होने दो, मेरा स्पर्श कर शरीर को पुलकित होने दो, तब तुम्हें आनन्द की अनुभूति होगी, तब तुम्हारे अन्दर प्रेम का अंकुर फूटेगा, तब तुम्हारा शरीर मेरी सुगंध से सुवासित हो सकेगा और तब तुम सही अर्थों में धन्य हो सकोगे, सही अर्थों में प्रेममय हो सकोगे, सही अर्थों में रसमय हो कर आनन्द से सराबोर हो सकोगे।

– एक बार देख तो लो, प्रयत्न करके ही सही।

—●—

जल बिच मीन पियासी

मेरे जीवन में सब कुछ होते हुए भी मुझे खाली-खाली सा लग रहा है, जैसे कि मैं युगों-युगों की प्यासी हूं, बेचैन हूं, परेशान हूं……… क्या करूं मेरे गुरुदेव ! यह प्यास कैसे मिट सकती है ?

– कबीर ने सही कहा है कि अथाह समुद्र में भी मछली प्यास से बेचैन है, तृपित है, प्यासी है ।

– और तुम भी इस दुःख के सागर में, गृहस्थ की इन परेशानियों के समुद्र में, मछली की तरह प्यासी हो, क्योंकि तुम्हें पता ही नहीं है, कि मीठे पानी का स्रोत कहां है, जहां प्यास बुझाई जा सके, अमृत की मधुर धारा किस ओर बह रही है, जहां तुम्हारी प्यास बुझ सके ।

– और इसके लिए तुम्हें गुरु के पास आना होगा, क्योंकि इस अथाह दुःख के समुद्र में वही एक मधुर धारा है, जहां प्यास बुझाई जा सकती है, वही एक कलकल करता हुआ झरना है, जहां हृदय को तृप्त किया जा सकता है ।

– और यह तृप्ति तो तुम्हारे पास ही है, अमृत की फुहार तो तुम्हारे पास ही बरस रही है, और तुम उस खारे नमकीन संसार के समुद्र की ओर भाग रही हो, अमृत का झरना तो बिल्कुल तुम्हारे पास कलकल करता हुआ बह रहा है, और तुम अपने दुःख, परेशानियों और संताप से सराबोर गृहस्थ के समुद्र में हिचकोले खा रही हो, और वह बेस्वाद, नमकीन खारा पानी तुम्हारी आंखों में, मुंह में और पेट में उतर रहा है, तुम्हें ऊबकाई आ रही है, आंखें खारे पानी से जल रही हैं, और तुम वहीं हाथ पैर मार रही हो ।

– तुम मेरे पास आओ, अपने गुरु के पास, अपने आत्मीय के पास, अपने स्वजन और जीवन की धड़कन के पास, ज्ञान के मीठ कलकल करते हुए झरने के पास, आनन्द की नृत्य करती हुई लहरों के पास ।

– और तुम वह सब कुछ पा लोगी, जिसकी तुम्हें चाह है, ध्यान-धारणा साधना-सिद्धि, सुख-सौभाग्य, आनन्द और मस्ती की भीनी-भीनी फुहार ……सौभाग्य का लहराता हुआ सागर, और आनन्द से सराबोर गुरू का हृदय, और इससे ज्यादा तुम्हें चाहिए भी क्या ?

करक कलेजे मांय

● **गुरुवर ! आपके पास से जाने के बाद हर क्षण, हर पल आपकी याद सताती रहती है, हूक उठती रहती है हृदय में, ऐसा लगता है, कि जैसे कलेजे में कोई फांस चुभ गई हो ...... इसके लिए क्या करूं, प्रभु ?**

– यह तुम्हारे कलेजे की कसक नहीं है, यह तो एक चेतना है, जो तुम्हें उठने के लिए, बढ़ने के लिए और पूर्ण रूप से एकाकार हो जाने के लिये प्रेरित कर रही है।

– यह फांस तुम्हारे कलेजे में कोई पहली बार नहीं फंसी है, इससे पहले भी कई बार यह फांस चुभी होगी, कई बार तुम्हारे कलेजे में दर्द उठा होगा, और तुमने सुना-अनसुना कर दिया होगा, कई बार तुम्हारे दिल में मिलने की हूक उठी होगी, और तुमने कस कर उसे दबा दी होगी।

– और यह कोई फांस इस जीवन की ही नहीं है, कई-कई जन्मों की फांस है, जो तुम्हारे कलेजे में गड़ी है, जो तुम्हें आगाह कर रही है, कि कहीं और चलना है, जो तुम्हें सावधान कर रही हैं कि यहीं नहीं रूक जाना है, मंजिल कहीं और है जहां तक जाना है, क्योंकि वहां जाने पर ही यह कसक मिट सकेगी, यह दर्द खत्म हो सकेगा, यह कलेजे में गड़ी हुई फांस निकल सकेगी।

– और मैं तो काफी समय से आवाज दे रहा हूं तुम्हें, निमंत्रण दे रहा हूं तुम्हें, स्वीकृति दे रहा हूं अपने पास आने की, आ कर मिलने की, मिल कर एकाकार हो जाने की, एकाकार हो कर समर्पण हो जाने की, और समर्पित हो कर अपने अस्तित्व को मिटा देने की।

– मैं तो आवाज दे रहा हूं युगों-युगों से तुम्हें, मैं तो बुला रहा हूं जनम-जनम से तुम्हें, मैं तो निमंत्रण दे रहा हूं, दोनों भुजाएं फैलाकर तुम्हें सीने से लगाने के लिये, वक्षस्थल में भींच लेने के लिये, दिल में पूरी तरह से उतार देने के लिये।

– तभी तो तुम्हारे कलेजे की यह "करक" निकल सकेगी, तभी तो इस फांस से तुम्हें मुक्ति मिल सकेगी, तभी तो तुम सदगुरू को पा सकोगी जनम-जनम के लिये, युगों-युगों के लिये।

– और तभी तुम पूर्ण बन सकोगी, आनंदित प्रफुल्लित, सुवासित।

—●—

हे री ! मैं तो प्रेम दीवानी

● **क्या प्रेम घटिया और तुच्छ है, क्या प्रेम करना ओछापन है, आखिर क्या है प्रेम ?**

– तुम प्रेम-दीवानी हुई नहीं, होती तो फिर मुझे यह सब कहना ही नहीं पड़ता, यह कुछ भी नहीं बताना पड़ता ।

– क्योंकि सारे वेद, शास्त्र, उपनिषद, दर्शन और मीमांसा "प्रेम" पर ही तो आकर खत्म होते हैं, जिसने प्रेम ही जान लिया, उसके पास बाकी जानने के लिए रहा ही क्या है ?

– और तुमने अभी प्रेम करना सीखा ही कहां है, तुमने तो वासना को ही प्रेम समझ लिया है, हाड़-मांस को ही प्रेम की अभिव्यक्ति मान ली है ।

– प्रेम तो जीवन का सौन्दर्य है, सम्पूर्ण जीवन की जगमगाहट है, हृदय का नृत्य है, मन की प्रफुल्लित तरंगें और धरती की थरथराहट है ।

– और गुरू को ध्यान से या धारणा से नहीं पाया जा सकता, पालथी मार कर आंखें बन्द करके भी नहीं पाया जा सकता, आचमनी से जल उछाल कर, या शंख बजा कर भी उसे नहीं पाया जा सकता ।

– प्रेम में दीवानगी अभी आई नहीं तुममें , प्रेम राधा का देखो, जो बांसुरी की एक धुन पर बेतहासा दौड़ी चली जाती थी, हांफती हुई, बेसुध, अपने आप से बेखबर । प्रेम तो मछली का देखो, एक क्षण के लिए उसे समुद्र के जल से हटा कर तो देखो, तड़फ कर जान दे देगी, प्रेम कुरंगी का देखो, एक क्षण के लिए भी कुरंग आंखों से ओझल होता है तो कुरंगी पत्थर पर सिर पटक कर जान दे देती है ।

– अगर प्रेम में दीवानगी ही आ गई, तो फिर क्या दुनियां, क्या समाज, ...क्या लोग और क्या आलोचनाएं । दीवानगी तो प्रेम का प्रतिफल है, ईश्वर का श्रेष्ठतम वरदान है, और गुरू से....ब्रह्म से ईश्वर से एकाकार हो जाने की सफल सहज क्रिया है ।

– और मैं कहता हूं, तुममें और दीवानगी आये, और त्वरा आये, और तुम इसी जीवन में ब्रह्म से एकाकार हो सको ।

रसो वै स: ब्रह्म

- **आपने अपने प्रवचनों में कहा है, कि गुरू के माध्यम से ब्रह्म से साक्षात्कार किया जा सकता है, क्या सामाजिक वर्जनाओं के रहते नारी भी ऐसा सौभाग्य पा सकती है ?**

– एक तो इस बात का ध्यान रखो कि साधना के पथ पर न तो कोई पुरुष होता है और न कोई स्त्री, वह एक सम्पूर्ण साधक होता है।

– और फिर साधक की यात्रा शून्य से प्रारम्भ होकर 'ब्रह्म' तक पहुंचती है, क्योंकि उसका अन्तिम पड़ाव ब्रह्म है, ब्रह्म से साक्षात्कार है, ब्रह्म में विसर्जन है।

– पर ब्रह्म को वेदों और शास्त्रों ने भी नहीं देखा, इस लिए गुरू के माध्यम से ही ब्रह्म तक की यात्रा सम्पन्न की जा सकती है, और जिसने गुरू को जान लिया, उसने ब्रह्म को जान लिया, जो गुरू से एकाकार हो गया, वह ब्रह्म से एकाकार हो गया, जो गुरू में विसर्जित हो गया, वह ब्रह्म में भी लीन हो गया।

– और फिर तुमने शब्द छोड़ा है 'सामाजिक वर्जनाओं' का, तो समाज कब किसी को बढ़ने देता है, कौओं का झुंड कब चाहेगा, कि उनमें से कोई हंस हो जाय, कीचड़ की गंदगी कब चाहेगी कि उसमें कोई कमल खिल जाय, गुलामी में सांस लेने वाले कब चाहेंगे कि कोई ताजी हवा की सुवास से सुगंधित मस्त और आनन्दित हो जाय।

– और फिर समाज ने तुम्हें दिया ही क्या है, कुंठा, परेशानी, बाधाएं, अड़चनें, कठिनाइयां और गुलामी।

– और जो समाज से दबता है, उसे समाज और दबाता है, जो समाज से भयभीत होता है, समाज उस पर और अधिक जुल्म करता है, और अधिक घेरे में कसता है, और अधिक सिकंजे में जकड़ता है।

– राधा ने कब समाज की परवाह की, वृषभानु ने उसे घर में कैद कर दिया तो क्या कृष्ण की बांसुरी सुनते ही यमुना किनारे दौड़ कर पहुंचने से रुकी, ललिता को दीवार में चुनने की तैयारी की, तो क्या वह कृष्ण से लिपटने से रुकी, मीरा को जहर का प्याला थमा दिया तो क्या उसने समाज की परवाह की, नदी के बहाव में बांध खड़े कर दिये, तो क्या उसे समुद्र से मिल जाने से कोई रोक सका ?

– यह तब होता है, जब हृदय में वेग होता है, तड़फ होती है, मिलने की चाह होती है, समाज से बगावत करके अपने आप को स्थापित करने की क्षमता होती है।

– और तुम्हें भी ब्रह्म से साक्षात्कार तक की मंजिल पार करने से कोई नहीं रोक सकता, होनी चाहिए तुम्हारे पैरों में ताकत, आंखों में चिनगारी और हृदय में बगावत।

गगन-धरण बिच उरभत हंसा

● **गुरूदेव, मैं आपको जितना ही ज्यादा समझने की कोशिश करता हूं, उतना ही ज्यादा उलझता जाता हूं, कैसे समझूं आपको ?**

– मुझे समझने की जरूरत ही नहीं है, समझना तो उसको पड़ता है, जिसे पहिचाना नहीं गया हो, जिसे देखा नहीं गया हो, जिसे जाना नहीं गया हो।

– मैं तो तुमसे बखूबी परिचित हूं, इस जन्म से ही नहीं, पिछले पच्चीस जन्मों से मैं तुम्हारे जीवन का साक्षी हूं, पिछले पच्चीस जन्मों से तुम मेरे शिष्य रहे हो, और मैं तुम्हारा गुरू रहा हूं।

– इसलिए पहिचानने या समझने की बात बेमानी है, तुम्हारी आंखों पर छल और झूठ का परदा पड़ा हुआ है, तुम्हारे नेत्रों के सामने कपट और कुतर्क का जाल बुना हुआ है, और इसीलिए तुम्हारी आंखें उस जाल के पार .... उस पर्दे को भेद कर मुझे देख नहीं पा रही हैं, मुझे चीन्ह नहीं पा रही हैं, मुझे पहिचान नहीं पा रही हैं।

– और तुम्हारी यह उलझन, तुम्हारे परिवार के द्वारा दी गई सौगात है तुम्हें, उन्होंने अपने स्वार्थ की वजह से तुम्हारी आंखों पर परदा डाल रक्खा है, इन दंभी और स्वार्थी परिजनों ने कपट से पर्दा तान रक्खा है, तुम्हारे और मेरे बीच में।

– इसीलिए तुम्हारी आखें उस पर्दे को भेद कर मुझे देख नहीं पा रही हैं, पर तुम्हारे मेरे संबंध तो युगों-युगों के हैं न, कई-कई पीढ़ियों के हैं न, इसलिए मन मेरे असली स्वरूप को देखने के लिये व्याकुल है, क्योंकि वह कई पीढ़ियों पहले, मेरे वास्तविक स्वरूप को देख कर आनन्दित रोमांचित, प्रफुल्लित हो चुका है, और इसीलिए वह पुनः उसी रूप को देखने के लिए व्याकुल है, और जब स्वार्थ के पर्दे की वजह से मेरे असली स्वरूप को तुम्हारी आंखें देख नहीं पाती, तो वे व्याकुल हो जाती हैं, और तुम उलझन में पड़ जाते हो।

– और समझना क्या है, मैं तुम्हारे बीच जीवन्त व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित हूं, यह क्या कम है, आंखों के रास्ते इस व्यक्तित्व को हृदय में उतारने की जरूरत है, तुम्हारी सारी उलझन स्वतः ही समाप्त हो जायेगी, और तुम वास्तविक गुरुत्व को अपने बीच पाकर धन्य-धन्य हो उठोगे।

गुरू ही तन-मन-प्राण

● **प्रभु, क्या जीवन में गुरू की जरूरत है ?**

– गुरू का तात्पर्य है, तुम्हारा अस्तित्व, गुरू का तात्पर्य है तुम्हारी जीवन्तता, गुरू का तात्पर्य है तुम्हारी साक्षी, तुम्हारी उपस्थिति, तुम्हारी प्रतिबद्धता।

– गुरू का तात्पर्य है. जीवन-यात्रा के लम्बे पड़ाव में विश्राम का स्थल, गुरू का तात्पर्य है, जीवन की सर्पीली भटकती हुई पगडंडियों के बीच स्वच्छ, सरल, सपाट राज-पथ, गुरू का तात्पर्य है, जीवन की उलझनों में सुलझने का भाव, उन्मुक्तता की क्रिया।

– क्योंकि गुरू जीवन के बियावान में मधुर पड़ाव है, जहां क्षण भर रुका जा सकता है, तपते हुए रेगिस्तान में गुरू शीतल छाया है, जहां बैठकर सुस्ताया जा सकता है, काली अंधेरी घटाटोप रात्रि में गुरू प्रकाश-स्तंभ की तरह है, जिसके सहारे मंजिल तक पहुंचा जा सकता है।

– और गुरू ही तुम्हें जीवन का पाठ पढ़ा सकता है, गुरू ही तुम्हें जीवन की पेचीदगियों में से निकलने का रास्ता बता सकता है, और गुरू ही तुम्हारे कठोर कर्कश जीवन को प्रेम की मधुर वाणी सिखा सकता है।

– अगर गुरू नहीं है, तो जीवन की इन उलझनों में भटकने का पूरा-पूरा अवसर है, अगर गुरू ही नहीं है, तो अंधेरी रात में दीवारों से सिर टकरा कर लहुलुहान होने की पूरी-पूरी संभावना है, और अगर गुरू ही नहीं है, तो जीवन की बेचैनी, उदासी, परेशानी के बीच मुस्कराने का कोई क्षण नहीं है।

– इसलिए गुरू जीवन की छाया, तपते और झुलसे शरीर पर आनन्द की फुहार है, कर्कश और कठोर पगडंडियों पर सरल सीधा पाथेय है, गुरू तो मृत्यु के बीच अमृत्यु का संदेश और भ्रम के बीच "ब्रह्म" की साक्षात उपस्थिति है, जीवन्तता है, चैतन्यता है।

– और गुरू का तात्पर्य है, मृत शरीर की चेतना, मुर्दा देह की धड़कन, हिंसा, क्रोध और वैमनस्यता के बीच प्रेम का सन्देश।

– और इसलिये तो शास्त्रों ने कहा कि, गुरू है तो जीवन है, धड़कन है, चेतना है, प्राण है।

—●—

ध्यान आमार आनंद

● **गुरुदेव ! ध्यान क्या है ? ध्यान लगाने की क्या जरूरत है, आखिर यह है क्या ?**

– तुम ध्यान को बुद्धि से जानने की कोशिश करोगे, तो यह समझ में नहीं आयेगा, उसे जानने के लिए हृदय की जरूरत है।

– और हृदय भी बंद भिचा-भिचा सा न हो, अपितु उन्मुक्त हो, स्वच्छ हो, खुला हुआ हो, क्योंकि उन्मुक्त आकाश में ही हृदय-हंस उड़ान भरसकता है।

– और यह उन्मुक्त हृदय प्राप्त होता है प्रेम से, प्रीति से, दीवानगी से।

– ध्यान के लिए सामने व्यक्तित्व का होना जरूरी है, साक्षी होनी आवश्यक है, उपस्थिति होनी अनिवार्य है, और गुरू को ही शास्त्रों ने "साक्षी" कहा है, जो तुम्हारे अस्तित्व को स्वीकार करे, हर क्षण, हर पल तुम्हारी आंखों के सामने रहे।

– और उस 'साक्षी' को, उस 'व्यक्तित्व' को उस 'गुरू' को आंखों के माध्यम से मन में उतार देना ही ध्यान है, उसमें मगन हो जाना ही ध्यान है, उसे आंखों में बसा लेना, और पलकों की ओट में छिपा लेना ही ध्यान है, मन की हजार-हजार परतों के भीतर उसे बिठा देना और एक-एक पल उसे निहारते रहना ही ध्यान है, उसके लिए सब कुछ दाव पर लगा देना, फना हो जाना ही ध्यान है, मर जाना और उसके लिए मिट जाना ही ध्यान है।

– क्योंकि, ध्यान में फिर उसके अलावा और कोई नहीं होता, दूसरे की उपस्थिति संभव ही नहीं है, दूसरे के बारे में चिन्तन होना नामुमकिन है, क्योंकि वह तो "प्रेम का दरिया है और उसी में डूब के मर जाना है"।

– और जिसने ऐसी एकाग्रता पा ली, जिसने गुरू को आंखों के पलंग पर बिठा कर उस पर, पलकों की चिक डाल दी, और पूर्ण रूप से डूब गये उसमें·······यही तो ध्यान है, और जिसने ध्यान पा लिया, उसने ईश्वर को ब्रह्म को, पा ही लिया।

अंसुवन जल सींच-सींच

● **गुरूदेव ! आप बहुत पीड़ा देते हैं, आंसू और उच्छवास, वेदना और सिसकियां, तड़फ और बेचैनी........ क्या गुरू यही प्रदान करता है ?**

– अभी तुम्हें पीड़ा और बेचैनी मिली नहीं, जितनी उच्छवास और तड़फ मिलनी चाहिए थी वह मिली नहीं, क्योंकि तड़फ तब पैदा होती है, जब मन में सैकड़ों विचार और सैकड़ों बिम्ब समाप्त होकर केवल एक बिम्ब रह जाता है और जब हृदय में एक बिम्ब एक मात्र गुरू ही रह जाता है, तब उसे "विचार शून्य हृदय" कहते हैं, जो योगियों को भी दुर्लभ है, और जब हृदय की गहराई तक, एक ही बिम्ब रह जाता है तो योगी जन इसे "निर्विकल्प समाधि" कहते हैं।

– और "निर्विकल्प समाधि" मानव जीवन की श्रेष्ठतम उपलब्धि है, जो पीड़ा की पगडंडियों पर चल कर मन में उतरती है, जो आह और उच्छवास के माध्यम से अपने होने का आभास देती है, जो आंसुओं के माध्यम से सम्पूर्ण रूप से प्रगट होती है।

– और यदि ऐसा हो रहा है, तो फिर तुम्हें चाहिए ही क्या, यदि तुम्हारी खोई-खोई आंखें किसी के बिम्ब को हौले से मन में उतार रही हैं, तो फिर इससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है, यदि बिना देखे चैन नहीं पड़ रहा है, तो फिर तुमसे बड़ा सौभाग्यशाली और कोई नहीं हो सकता, और यदि एकान्त क्षणों में, बिम्ब में खोकर कपोलों पर मोती लुढ़क रहे हैं, तो योगी-जन भी तुम्हारे भाग्य से ईर्ष्या करते होंगे।

– और मुझे प्रसन्नता है, कि तुम्हारे मन में दर्द जगा है, वेदना का संगीत मुखरित हुआ है, सिसकियों की सितार तरंगित होने लगी है, और प्रेम की ऊष्मा तुम्हारे हृदय-कमल को पूरी तरह से विकसित कर रही है... यही तो गीता की "स्थित प्रज्ञता" है, योगियों की "निर्विकल्प समाधि" है।

– और मैं यह कह रहा हूं, कि यदि ऐसा हो रहा है तो मुझे प्रसन्नता है।

—●—

पूरब जनम री प्रीत पुरानी

● **क्या गुरू और शिष्य का कोई पारस्परिक सम्बन्ध है भी ?**

– सम्बन्ध !

– इस संसार में केवल सम्बन्ध तो गुरू और शिष्य का ही होता है, बाकी तो सब देह-गत स्वार्थ है।

– अन्य सारे सम्बन्ध देह-गत होते हैं, मां-बाप, भाई-बहिन, पति-पत्नी, मित्र, सखा, स्वजन, प्रेमी-प्रेमिका, जब तक शरीर है ये सम्बन्ध हैं, और शरीर नहीं रहा, तो ये संबंध भी धीरे-धीरे धूमिल होते हुए काल के गर्त में चले जाते हैं।

– पर गुरू और शिष्य का परस्पर देह-गत कोई सम्बन्ध नहीं होता, यह तो मन का भी नहीं, आत्मा का सम्बन्ध होता है, मन तो फिर भी बदल जाता है, पर आत्मा तो बदलती नहीं, वह तो युग-युगीन होती है, और ये संबंध भी युग-युगीन होते हैं।

– तुम आज मेरे शिष्य हो, तो पिछले जीवन में भी थे, उससे पहले भी ....कई-कई जन्मों से....क्योंकि ये आत्मगत सम्बन्ध बदलते नहीं।

– यह अलग बात है, तुम कुछ समय तक इधर-उधर भटको, हो सकता है, गलत पगडंडियों पर चल कर चमकीले गुरुओं की चकाचौंध में खोये से कुछ समय के लिए भटक जाओ, पर शांति और विश्राम तो तुम्हें वहीं मिलेगी, जिसके साथ तुम्हारे आत्मगत युग-युगीन संबंध रहे हैं।

– और जब ऐसे गुरू से भेंट होती है, तो शिष्य के चेहरे पर एक अजीब सा आकर्षण-सम्मोहन आ जाता है, सारा शरीर गतिशील और नृत्यमय हो उठता है, मन की लहरें गुरू से मिलने के लिए मचलने लगती हैं, दिल में एक अजीब सी कशिश, एक अजीब सी खुमारी और एक अजीब सी मस्ती आ जाती है, और शिष्य पूरा का पूरा बदल जाता है, जैसे वसन्त आने पर सूखी टहनियों पर नई-नई कोपलें आकर सुवासित हो गई हों।

– गुरू का स्पर्श पाकर शिष्य का शरीर चैतन्य हो पाता है, चेहरे पर मुस्कराहट, आंखों में खुमारी और हृदय में नृत्य की लय, थिरक उठती है, और वह गुरू के चरणों में समर्पित होकर पिछले जीवन के सम्बन्ध को इस जीवन से एक क्षण में जोड़ लेता है।

चमकत बिजुरी धरण-गगन बिच

● पिछले दिनों मैंने आपसे दीक्षा ली, और अचानक जीवन में बहुत कुछ घट गया, जैसे बिजली कौंधी हो, यह क्या हुआ ?

– दीक्षा का तात्पर्य है, अनगढ़ पत्थर को तरास कर मूर्ति बना देना, दीक्षा का तात्पर्य है, जो तुम्हारे जीवन की नदी बहती-बहती रुक गई थी, उसे पुनः प्रवाहित कर देना ···· ।

– और मैंने यह किया, समाज ने जो हाथ-पैरों में बेड़ियां डाल दी थी, उसे काटी, तुम आकाश में उड़ना भूल गयी थी, तुम्हें वापिस पंख दिये, और आकाश में उड़ने की कला सिखाई, मानसरोवर झील में उतरने की और तैरने की जो कला भूल गई थी, उसे वापिस गति दी, जिससे कि तुम वापिस तैरने का, निर्मल जल में डुबकी लगाने का आनन्द ले सको ।

– यदि लोहे का टुकड़ा पारस से स्पर्श करता है, तो एक कौंध पैदा होती है, और बहुत कुछ घट जाता है, लोहे के अन्दर के सारे अणु-परमाणु खंडित-विखंडित हो जाते हैं, और वह लोहा खरा सोना बन जाता है, और दीक्षा के बाद तुम्हारे अन्दर भी बिजली कौंधी, या हलचल हुई तो ऐसा तो होना ही था, चकमक पत्थर से रगड़ खाय और आग पैदा न हो यह सम्भव नहीं, और दीक्षा की रगड़ खाकर तुम्हारे जीवन में बहुत कुछ कौंध गया, और बहुत कुछ कौंधेगा, क्योंकि यह दीक्षा है, दक्ष होने की क्रिया है ।

– दीक्षा के द्वारा अवरुद्ध नदी को समुद्र तक पहुंचने का रास्ता दिखाया है, घुटन भरे तुम्हारे जीवन को वसन्त की सुगन्ध से आप्लावित किया है और दीक्षा का स्पर्श देकर तुम्हारी इस सड़ी-गली देह को स्वर्णिम आभा प्रदान की है····और यह घटना सामान्य नहीं, यह सब कुछ घटना ही था, और घटा ही, और घटेगा भी ।

उर ना सिन्धु समाय

● **गुरुवर ! जब से आपको देखा है, घर आने के बाद हर रोज आपको स्वप्न में देख लेती हूं, और मन में उमड़ते घुमड़ते विचारों को पत्र में लिखकर आपको भेजने की कोशिश करती हूं, पर हर बार पत्र लिखती हूं, हर बार फाड़ देती हूं सोचती हूं कि बात पूरी जमी नहीं .... ।**

– और बात जमेगी भी नहीं ।

– क्योंकि मन तो अथाह समुद्र है, जिसमें हजारों-लाखों विचार भावनाएं उमड़ती होंगी ।

– और फिर गुरू तो स्वयं हिमालयवत होता है, जिसका पूरा-पूरा वर्णन संभव ही नहीं ।

– फिर तुम्हारे मन के हजारों विचार छोटे से कागज पर कैसे अंकित हो सकते हैं, फिर तुम जो स्वप्न में गुरु के हजारों-हजारों बिम्ब देखती हो, वे एक छोटे से कागज पर अंकन होना कैसे संभव है ।

– अगर जीवन भर पत्र लिखती रहोगी, तब भी वे सारी की सारी भावनाएं कागज के टुकड़े पर अंकित नहीं हो सकती, तुम पूरे हिमालय को कागज के टुकड़े में समेटना चाहती हो, सम्पूर्ण आकाश को बांहो में भरना चाहती हो, यह संभव हो ही नही सकता ।

– क्योंकि तुम्हारी आंख ने एक क्षण में ही जो देखा है, वह गुरू की काया नहीं उसके विराट व्यक्तित्व को चीन्हा है, देखा है,' आंखों के रास्ते मन पर उतारा है, उस विराटता के लिये कागज तो क्या, पूरी पृथ्वी पर भी लेखन करो, तो वह भी छोटी पड़ेगी ।

– तुम्हें यादों की लेखनी को आंसुओं को स्याही में डुबो कर मन के कागज पर वे बिम्ब, वे भावनाएं वह व्यक्तित्व अंकित करना होगा, तब तुम कुछ लिख सकोगी। वेदना और उच्छ्वास को आंखों की पलकों मे चुनना पड़ेगा, तब तुम कुछ चीन्ह सकोगी, विरह की मधुर छाया में गुनगुनाहट के गीत बिखेरने पड़ेंगे, वे गीत हवा के पंखों पर स्वतः मेरे पास आ जायेंगे, कभी आंसुओं के छन्द विरह के कागज पर अंकित करने की कोशिश करो, तब तुम जो चाहती हो, वह संभवतः हो सकेगा ।

जक न पड़त, हर पल मग जोवत

- **मैं आपकी उपस्थिति हरक्षण अपने चारों ओर आस-पास अनुभव करता हूं क्या यह सही है ?**

- तार्किक दृष्टि से भले ही यह सही नहीं हो, पर तर्क तो बुद्धि को मलिन और विभ्रम करता है, तर्क तो वैश्या है, जो नित्य अपना सब कुछ बदलती रहती है,
- पर गुरू को तर्क से नहीं, बुद्धि से नहीं श्रद्धा से पहिचाना जायगा, श्रद्धा के द्वारा ही गुरू के विराट व्यक्तित्व को आंक सकते हैं ।
- जिस प्रकार प्रेम को तर्क से बुद्धि से न तो नापा जा सकता है, न समझा जा सकता है, वह तो एक मिठास है, जो अनुभव की जा सकती है ।
- पर प्रेम का यह अनुभव श्रद्धा या विश्वास से ही संभव है, विश्वास की डोर के सहारे ही प्रेम पूरे जीवन को नाप लेता है, विश्वास के इन्द्र-धनुषी रंगों में ही प्रियतमा की आंखे मिलन में नाच उठती हैं, तो वियोग में छलछला आती हैं, दिन को हूक का कलरव सुनाई देता है, तो रात को आंसुओं से तकिया भीग जाता है, दिन को बावरी सी घूमती रहती है, तो रात को प्रियतम के चित्र से घंटों बातें करती रहती है ।
- और ये बातें तभी तो होती हैं, जब वह उपस्थित होता है, अनुपस्थित से तो बात हो ही नहीं सकती, पर वह प्रियतम मन में बैठा होता है, शरीर के पोर-पोर में उसकी सुगंध महकती रहती है, आंख के रेशे-रेशे में उसकी छवि समाई होती है ।
- ठीक इसी प्रकार शास्त्रों ने गुरू को ही प्रेम कहा है, और प्रेम को ही गुरू "गुरू चित्तं वै चित्तं गुरू" अर्थात् गुरू देखने की वस्तु नहीं, वह प्रेम की जीवन्त उपस्थिति है, प्रेम का वास्तविक स्वरूप है, प्रेम की जीवन्त अभिव्यक्ति है ।
- और जब तुम्हारा गुरू से प्रेम है तो फिर उसे आस-पास अनुभव कर रहे हो तो इसमें आश्चर्य क्या है ? अगर तुम्हारा रोम-रोम मेरे नाम का उच्चारण कर रहा है, तो इसमें विस्मय क्या है, और यदि हरक्षण तुम मेरे सुवास से महकते रहते हो तो इसमें अचंभा क्या है ?
- मैं तो जीवन्त व्यक्तित्व के रूप में हर क्षण तुम्हारे पास हूं ही, और रहूंगा भी ।

—●—

जाऊं कहां तजि चरण तुम्हारे

● मैं किस देवता की साधना करूं, प्रभु ! मुझे मार्ग दर्शन दें।

– इस देश में इतने अधिक देवी-देवता हैं, कि उनमें से किसी एक का चयन करना अत्यन्त कठिन है।

– और इस देश में आजादी से पूर्व तो मात्र तैंतीस करोड़ देवी-देवता ही थे, पर अब तो उनकी जन-संख्या सौ करोड़ तक पहुंचने लगी है, इस देश में तो प्रत्येक जन्म लेने वाला देवी या देवता ही है।

-- और फिर तुम्हें किसी देवता की साधना बताऊं भी, तो उसमें तुम्हारे धर्म की पक्की दीवारें तुम्हें रोक देंगी, तुम्हारे पंडे-पुरोहित बखेड़ा खड़ा कर देंगे, हिंसा पर उतारू हो जायेंगे और आलोचना और गालियों की अजस्र-धारा में तुम बह जाओगे।

– इसलिए सावधानी पूर्वक निर्णय लेना पड़ेगा, कि जो तुम्हें पूर्णता दे सके, और पूर्णता तो केवल 'आत्मा' ही दिला सकती है।

– फिर तुम्हारे पास तो चर्म-चक्षु है, मनुष्य की आंखों की तो एक सीमा है, कि पांच सौ मीटर से ज्यादा दूर नहीं देख सकती।

– और न जाज्वल्यमान देवता को ये तुम्हारी आंखें देख भी सकेंगी, क्योंकि इनमें क्षमता ही नहीं है।

-पर यह क्षमता गुरू की आंखों से प्राप्त हो सकती है, क्योंकि उसने उस जाज्वल्यमान स्वरूप को देखा है और तुम भी देख सकते हो, आवश्यकता है अपने अन्दर गुरू को उतार देने की, नेत्रों में गुरू की ज्योति को समाहित कर देने की, और झुक जाने की, विनीत हो जाने की, नम्र हो जाने की।

– और जब तुम गुरू के चरणों में झुकोगे, तो सभी देवता साक्षात जाज्वल्य स्वरूप में वहीं दिखाई देंगे ""उन्हीं चरणों में गुरू के पाद-पद्मों में।

लचकी डाल गुलाब की

- **मैं नित्य पूजा पाठ करता हूं, गुरू मन्त्र का जप भी करता हूं, परन्तु फिर भी आपके दर्शन होते ही नहीं, बिम्बात्मक भी नहीं, क्यों ? क्या कारण है, प्रभु ?**

– पूजा पाठ करने से या आचमनी से जल उछालने से गुरू दर्शन कैसे संभव है ?

– गुरू तो चित्त की अवस्था है, गुरू को तो चित्त के सिंहासन पर ही बिठाया जा सकता है, और वहीं से गुरू के दर्शन....साक्षात् दर्शन संभव है, "जब जरा गर्दन झुकाई देख ली" ।

– पर तुम्हारा चित्त तो भरा है, राग, द्वेष, घृणा, आलोचना, कुतर्क और गुरू अवज्ञा से, तुम्हारे चित्त पर तो अधिकार है अहंकार का, उस सिंहासन पर तो तुम्हारे धन का गरूर बैठा हुआ है, वहां पर तो कुतर्क का जाल फैला हुआ है, जिसमें तुम खुद ही उलझ कर औंधे पड़े हो ।

– फिर वहां गुरू कैसे दिखाई देंगे, जहां कुतर्क का मल भरा हुआ है, वहां पवित्रता कैसे स्थापित हो सकती है, जहां अहंकार और अवज्ञा का घटाटोप अन्धकार है, वहां रोशनी की उम्मीद करना ही व्यर्थ है ।

– और इसके लिये तुम्हें नम्र होना पड़ेगा, फल से लदी हुई झुकी डाली की तरह, तुम्हें विनीत होना पड़ेगा गुलाब की लचकती हुई टहनी की तरह, तुम्हें झुकना पड़ेगा मोगरे की महकती हुई बेल की तरह ।

– और तभी तुम्हारे चित्त के रुंधे कपाट खुल सकेंगे, तभी उनमें ताजी हवा का झोंका नृत्य करेगा, तभी उस सिंहासन पर गुरू का चैतन्य स्वरूप स्थापित होगा, और तभी तुम थोड़ी सी भी गर्दन झुकाओगे, तो मुस्कराते हुए गुरूदेव को अपने अन्दर अपने सामने ही साक्षात् स्वरूप में देख सकोगे ।

– क्योंकि मैं तो तुम्हारे हृदय में आने के लिए तैयार हूं, तुम्हीं ने किवाड़ बंद कर रखे हैं ।

—●—

नदी समानी समद में

● **मैंने बहुत साधनाएं की, गुरुवर ! पर कभी भी अनुभूति नहीं हुई ?**

– अनुभूति शब्द बना है अनुभव से, और अनुभव का तात्पर्य है चेतना, जीवन्तता, सप्राणता ।

– और तुम में चेतना नहीं है, भावनात्मक शब्दों में तुम चलते-फिरते 'मृत' व्यक्ति हो, जिसमें कोई हिलोर नहीं, तरंग नहीं, उछाह या उत्साह नहीं ।

– तुम्हारा जीवन भी बंधे हुए तालाब की तरह है, तालाब में कोई लहर या तरंग नहीं उठती, वह निर्जीव सा पड़ा होता है और उसका पानी चुकता-चुकता एक दिन वह तालाब सूख जाता है ।

– पर समुद्र सूखता नहीं, क्योंकि उसमें तरंग है, लहरें हैं, आकाश को छूती हुई सी लहरें, और इसीलिये वह जीवित है, चेतनायुक्त है ।

– और आवश्यकता है, तुम्हारे सरोवर को समुद्र में समावेश करने का, उसे बहती हुई धार बनाने का, तुम्हारा जीवन, जो बंधे हुए तालाब की तरह है, उसे धारा की तरह बहने दो, अपने आप बहने दो, रोको मत ··· और निश्चय ही वह धारा समुद्र में मिल जायेगी····तुम्हें तो केवल एक दृष्टा बनना है ।

– गुरू रूपी समुद्र तुम्हें आवाज दे रहा है, वह तो हर क्षण नदी को अपने वक्षस्थल में समेटने के लिए आतुर है, अपने में आत्मसात कर लहरें बनाने के लिए प्रयत्नशील है ।

– पर वह नदी बहे तो सही, धारा बढ़े तो सही, वेग के साथ समुद्र में मिले तो सही···· और जिस दिन शिष्य रूपी नदी का, गुरू रूपी समुद्र में विलीनीकरण हो जायेगा, अपने आप तुम्हें अनुभूति हो जायगी निश्चय ही, क्योंकि तभी तुम जीवन्त हो सकोगे, सप्राण हो सकोगे, विसर्जित हो सकोगे, और यह विसर्जन ही अनुभूति के द्वार खोल देगी ।

हंसा ! मान सरोवर जाहि

● **आपने शास्त्रों में निहित गुरु के महत्व पर काफी कुछ कहा है, पर एक नया व्यक्ति 'गुरु' की खोज किस प्रकार करे ? कैसे पता चले कि मैं सही गुरु के पास पहुंच गया हूं ?**

– गुरू के बारे में मैंने जो कुछ कहा है, वह तो पूरे शास्त्रों का मंथन किया जाय, तो मात्र एक प्रतिशत ही कहा है शायद उतना भी नहीं, क्योंकि वेदों से लगा कर आज तक गुरू के बारे में जितना और जो कुछ लिखा है, उतना किसी विषय पर नहीं।

– क्योंकि जीवन का आधार, जीवन का मूल उत्स 'ब्रह्म' तक पहुंचने का सोपान गुरू ही है, और वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, कणाद से लगा कर शंकराचार्य, गोरखनाथ तक को गुरू के बारे में कहना ही था, क्योंकि पूर्णता का पहला पड़ाव गुरू है तो अंतिम पड़ाव भी गुरू ही है, और बिना गुरू तत्व के न पूर्णता के "अथ:" तक जा सकते हैं, और न पूर्णता की "इति" तक।

– और फिर तुमने गुरू की खोज करने की बात पूछी, गुरू की खोज करने की जरूरत ही नहीं है, गुरू और शिष्य के तार तो कई-कई जन्मों से परस्पर जुड़े ही होते हैं, अतः शिष्य स्वतः खिंच कर गुरू तक पहुंच जाता है।

– नदी को कौन रास्ता बताता है समुद्र तक पहुंचने का, कोयल को कौन बताता है कि वसन्त आ गया है और कुहक भरनी है, मयूर को कौन बताता है कि वर्षा ऋतु आने वाली है और तुम्हें नृत्यमय होना है, हंस के बच्चों को मानसरोवर का रास्ता कौन बताता है ?

– जिसके मिलने पर हृदय नाचने लग जाय, वही गुरू है, जिसे देखने पर उसे भुजाओं में भर देने को जी मचल जाय, वही गुरू है, जिसका स्पर्श पा कर शरीर में अपूर्व सौन्दर्य निखर जाय, आंख में प्रसन्नता की चमक कौंध जाय, हृदय में गुलाब की महक भर जाय, तब जान लेना चाहिए कि यही गुरू है, जिसकी मुझे खोज थी, और यही गुरू की पहिचान है।

मंतर तो मन को भलो

● मैं कौन सा मन्त्र जाप करूं, जिससे जीवन सार्थक हो जाय, संवर जाय ?

– तुम मंत्र की परिभाषा ही नहीं जानते, जो कुछ धार्मिक गुरुओं ने तुम्हें तोते की तरह कुछ अक्षर रटा दिये, उसी को मंत्र समझ बैठे हो, और पीछे पड़ गये हो उन अक्षरों के ।

– मंत्र का तात्पर्य मात्र अक्षरों का समूह नहीं, वाक्य विन्यास नहीं, मंत्र का मतलब तो 'मन' को स्वतंत्र करना है, मन पर पड़े हुए सौ-सौ पर्दों को हटाना है, मन की अंधेरी कोठरी में रोशनी की किरण बिखेरनी है, मन के घुटन भरे वातावरण में वसन्त का सुरभित झोंका भरना है ।

– और मन के सारे तर्कों को समाप्त करने की क्रिया मंत्र है, मन को भ्रम की गुलामी से मुक्त करना मंत्र है, मन पर पड़े कुतर्कों के जाल को छिन्न-भिन्न करने की क्रिया मंत्र है, आलोचनाओं से जकड़े मन की हथकड़ियों को तोड़ना मंत्र है, और अहंकार की बदबू से मन को मुक्त कर देने की क्रिया मंत्र है ।

– और जब मन स्वतन्त्र, स्वच्छ हो जाता है, तो मन के साथ-साथ शिष्य का पूरा शरीर गुरू के चरणों में स्वतः झुक जाता है, और झुकते ही शिष्य को उन चरणों में ही मंदिर, मस्जिद या गिरजाघर दिखाई दे जाते हैं, विनम्र होते ही उन चरणों में ही अपने इष्ट की साक्षात् मूर्ति दृष्टिगोचर हो जाती है, और समर्पित होते ही साधना की पूर्णता स्वतः स्पष्ट हो जाती है ।

– तब गुरू का शब्द ही मंत्र बन जाता है, गुरू की आज्ञा ही महामंत्र बन जाता है, और यह आज्ञा पालन ही साधना है, जीवन की सार्थकता है, जीवन को संवार कर पूर्णता तक पहुंचाना ही सिद्धि है।

चित्त चकमक हुई जोत

- **मेरी इतनी अधिक उम्र हो गई है, कि अब शिष्य बनने से कोई फायदा नहीं अब कुछ नहीं हो सकता है, अब तो........ ।**

– तुम्हारी आंख बनिये की तराजू की तरह है, जो फायदे-नुकसान की बात सोचती रहती है ।

– पर शिष्य बनने में हानि की संभावना तो नहीं के बराबर है, या यों कहूं कि हानि तो है ही नहीं, लाभ ही लाभ है, क्योंकि उसके पास गवाने के लिये कुछ भी नहीं होता, अपितु लेना ही लेना होता है ।

– उसके पास कुछ है ही नहीं, जो गुरू को भेंट में दे सके, पर लेने के लिये तो असंख्य हीरे मोती जवाहरात हैं, अगर एक-आध हीरे का टुकड़ा मिल गया तब भी पूरा जीवन संवर जायगा ।

– और उम्र तो व्यर्थ का चिन्तन है, क्योंकि तुम जिसको उम्र कहते हो, वह उम्र है ही नहीं, उम्र तो सुगंधित देवदारू का घना जंगल है, जिसका ओर-छोर तुम्हें ज्ञात नहीं ।

– और फिर शिष्य बनने में, और गुरू से पूर्णता पा लेने में पूरे उम्र की दरकार भी नहीं, पूरे जीवन में से केवल एक मिनट.........मात्र एक क्षण ही पर्याप्त है, ...यह एक क्षण ही पूरे जीवन को जगमगा देगा, रोशनी से भर देगा, ज्योत्सित कर देगा ।

– चकमक पत्थर में से चिन्गारी निकालने में वर्षों या महीनों की दरकार नहीं, एक रगड़ की जरूरत है, एक क्षण के लिये रगड़ लगी, और चमक पैदा हो गई, चमक पैदा हुई और अन्धकार में रोशनी फूट पड़ी ।

– तुम्हें भी गुरू रूपी पारस की एक रगड़ खानी है, इसके लिये मुझे तुम्हारी पूरी उम्र की आवश्यकता नहीं, एक सैकण्ड चाहिए, और मैं तुम्हारे पूरे जीवन को संवार दूंगा ।

– तुम्हें केवल मेरे पास आना है, गुरू की रगड़ खानी है, बाकी सारी जिम्मेवारी मुझ पर छोड़ दो ।

—●—

मन उरझत जानूं नहीं

● गुरुवर, कभी आप राम, कभी आप कृष्ण तो कभी आप शंकराचार्य और कभी आप सामान्य गृहस्थ दिखाई देते हैं, यह सब क्या है ? क्यों है ?

– इसलिये कि तुम जो कुछ मुझमें देख रहे हो वह सत्य है, आंख के नीचे एक और आंख है, जिसे दिव्य चक्षु कहते हैं, इसलिये अन्तर्निहित आंख धोखा नहीं खाती, वह जो कुछ देख रही है, सही देख रही है।

– पर तुम्हारा मन कुतर्कों से भरा हुआ है, उस पर बुद्धि हावी है, वह मूल स्वरूप को देखते हुए भी अनदेखा कर देती है, समझते हुए भी मन ना समझ बना रहता है, जानते बूझते भी अनजान सा बना रहता है, क्योंकि इसमें उसे सुख मिलता है, इसमें वह अपने आपको सुरक्षित अनुभव करता है।

– और जीवन इतना छोटा सा ही नहीं है, जितना तुम समझ बैठे हो, मां के गर्भ से जन्म लेकर श्मशान तक की यात्रा को ही जीवन नहीं कहते जीवन कोई बबूल का पेड़ नहीं है, वह तो देवदारू की तरह पूरी लम्बाई लिये हुए है, जो आकाश को छूने की सामर्थ्य रखता है, जीवन का एक छोर हजार-हजार वर्ष पहले था, तो उसका अंतिम छोर हजार-हजार वर्ष बाद आयेगा।

– इस लम्बे जीवन छोर में तुमने कई बार जन्म लिया, त्रेता युग में भी द्वापर युग में भी –शंकराचार्य के युग में भी और वर्तमान युग में भी।

– और इस पूरे फलक में तुम्हारी अन्तर्निहित आंख ने मुझे किसी जीवन में देखा होगा, और वह स्मृति पटल पर अंकित हो गया होगा, वह अंकन ही तुम्हें विविध रूपों में दिखाई पड़ रहा है।

– इसलिए तुम जो कुछ देख रहे हो, वह सत्य है, प्रामाणिक है, जाग्रतावस्था का प्रमाण है।

—●—

मगन भई मीरा नाची रे

● **मैं मौन तो हूं, पर घुटन से भर गई हूं, मैं बहुत कुछ करना तो चाहती हूं, पर जुबान पर सौ-सौ ताले पड़ गये हैं, मैं आपके चरणों तक पहुंचना तो चाहती हूं, पर पैरों में हजार-हजार मन के पत्थर बंधे हुए से प्रतीत होते हैं, कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूं ? कैसे करूं ?**

– ये बंधन तुम्हारे खुद के ही बनाये हुए हैं, जुबान पर जो ताले अनुभव कर रही हो, वे तुम्हारी कायरता और बुझदिली की वजह से है, पैरों पर जो हजार-हजार मन के पत्थर बंधे हुए से अनुभव कर रही हो, वह तुम्हारे समाज की दी हुई सौगात है, जिसे कायरता पूर्वक तुमने स्वीकार किया है।

– तुमने लिखा है कि मैं तुमसे मिलना चाहती हूं, एक शिष्य अपने गुरू से भेंट करना चाहता है तो उसे रोकता कौन है, बहती हुई नदी को समुद्र तक पहुंचने से कौन रोक सकता है, वसन्त आने पर कोयल के गले में कुहक भरने पर कौन बन्धन लगा सकता है, घुमड़ते बादलों को देख कर मयूरी को नाचने पर कौन वरज सकता है।

– रुके हुए तालाब को बांधा जा सकता है, बहती हुई नदी को रोकने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है, वसन्त की आवाज पर सुगन्धित हवा को बहने से कोई नहीं रोक सकता, क्योंकि इनमें प्रवाह है, क्योंकि इनमें चेतना है, मिलने की उत्कट चाह है, पैरों में ताकत है और आंखों में बगावत के निशान हैं और यह बगावत ही सामान्य मानव को "ब्रह्म" तक पहुंचने में सहायक होती है।

—●—

ध्यान बिनु अज्ञाना

● ध्यान क्या है प्रभु ! इस वारे में अलग-अलग ग्रन्थों में अलग-अलग विवेचनाएं हैं ? कुछ भी स्पष्ट नहीं होता, क्या यह रहस्य स्पष्ट कर सकेंगे, नाथ !

– ध्यान रहस्य पूर्ण या अस्पष्ट है ही नहीं, कुछ कुतर्की और स्वार्थी लोगों ने इसे उलझा दिया है, अस्पष्ट कर दिया है।

– और यह छल का नियम है, कि जिसके वारे में ज्ञान न हो, उसे उलझा दो, फिर तुम्हारी अज्ञानता पर कोई प्रहार नहीं कर सकेगा, और कुछ ढोंगी सन्यासियों, साधुओं ने इस शब्द को भी उलझा कर रख दिया है।

– ध्यान तो गहराई तक जाने की क्रिया है, ऊपरी देह के नीचे मन और मन के नीचे प्राण तत्व है, इस प्राण तत्व की यात्रा को 'ध्यान' कहते हैं।

– तुम चारों तरफ से भीड़ से घिरे हुए हो, पर भीड़ में घिरने के वावजूद भी अकेले हो, सर्वथा निस्संग, एकाकी, अकेले, असहाय।

– और इस अकेलेपन से तुम घवरा गये हो, क्योंकि तुम्हारे जन्म का प्रारम्भ अकेलेपन से हुआ था और अर्थी पर लेट कर यात्रा भी अकेले ही होगी, भीड़ तो तमाशा है, एक झुण्ड है, जो चारों ओर से तुम्हें घेरे हुए हैं।

– और जिस दिन वाहरी दृश्य से कट कर अपने अन्दर उतर जाओगे तो एक विराट ब्रह्माण्ड तुम्हारे सामने होगा, जिस प्रकार बीज धरती की गहराई में उतर कर विशाल वट वृक्ष का निर्माण प्रारम्भ कर देता है, जिस प्रकार बूंद समुद्र से उछल कर नदी का रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार तुम ज्यों ही वाहरी संसार से कटोगे, त्यों ही मुस्कराते हुए गुरू हाथ बढ़ाये हुए साफ-साफ दिखाई देंगे।

– तुम्हें कुछ करना नहीं है, इस घुप्प अंधेरे में तुम्हें तो अपना हाथ चुप-चाप गुरू के हाथ में दे कर गहराई में उतर जाना है, और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक भाग बन जाना है, यही तो "ध्यान" है, इसी को तो समाधि कहते हैं।

तत्वमसि.... तत्वमसि

● **तंत्र के बारे में आप स्पष्ट करें प्रभु, इस बारे में बहुत गलतफहमियां हैं ?**

– तंत्र कोई क्रिया नहीं है, कोई पद्धति या विवेचना नहीं है, अपितु तुम स्वयं नये तंत्र हो, मानव के शरीर को ही तंत्र कहा गया है, और तुम स्वयं नये तंत्र की उत्पत्ति करने में समर्थ हो।

– जब माया और पुरुष, शिव और शक्ति का मिलन होता है, तो परस्पर आकर्षण-विकर्षण होता है, उसी का परिणाम तंत्र है।

– तंत्र का तात्पर्य है, प्रकृति से सर्वथा नवीन रूप, नवीन पदार्थ, नवीन तत्व की रचना कर देना, एक ऐसी रचना जो कोई अन्य न कर सके, संसार में करोड़ों स्त्री-पुरुष हैं, और प्रत्येक परस्पर आकर्षण विकर्षण में रत होते हैं, पर जिस तत्व की, जिस प्रकार के प्राणी की तुमने रचना कर दी, आंख, नाक, कान, चेहरे का आकार लेकर जैसे तत्व की रचना तुमने कर दी, वैसा पृथ्वी पर दूसरा कोई कर ही नहीं सकता, न अभी तक कर सका है, और न भविष्य में कर सकेगा।

– इसलिए तंत्र का तात्पर्य है, सृष्टि की नवीनता, नूतनता, सौन्दर्य, सजीवता, सप्राणता, व्यवस्था, व्यवस्थित क्रिया।

– पर आकर्षण-विकर्षण का भी सहजीकरण नहीं है, इसकी भी एक अलग पद्धति है, एक अलग प्रकार की क्रिया है, और इस प्रकार की क्रिया पद्धति से ही राम का जन्म हो सकता है, कृष्ण की उत्पत्ति की जा सकती है, बुद्ध के स्वरूप का तंत्र निर्माण किया जा सकता है, महावीर की पृथ्वी पर रचना की जा सकती है।

– क्योंकि यह गोपनीय और गंभीर क्रिया है, यह उन्मुक्त और स्वच्छन्द क्रिया है, गुरू के प्राण तत्वों के संयोजन से ही यह क्रिया आकाश में अंकित होती है, वायु के पंखों पर विचरण करती है, ब्रह्माण्ड में अवतरित होती है।

– और यही क्रिया शिष्य के माध्यम से तंत्र के रूप में प्रादुर्भूत होती है।

पूजा और पुजापा प्रभुवर ! इसी पुजारिन को समझो

● मैं आपकी पूजा करना चाहती हूं गुरुवर ! आपको क्या भेंट चढ़ाऊं ?

– बाहिर से तो पत्थरों से निर्मित देवताओं की पूजा की जा सकती है, जीवित जाग्रत गुरू की पूजा तो हृदय में बिठा कर की जाती है, दिल के पवित्र आंगन में, प्रेम के सुन्दर सिंहासन पर बिठा कर मुस्कराहट के फूलों पर उन्हें बिठाया जाता है।

– और हृदय के तारों की झनझनाहट से संगीत मुखरित किया जाता है, आंखों के दीप में स्नेह की बाती जला कर आरती उतारी जाती है।

– प्रणय के घुंघुरू बांध कर रिझाया जाता है, आनन्द की करधनी बजा कर उल्लसित किया जाता है, और लज्जा के झीने घूंघट से उसे निहारा जाता है।

– दिल के स्वच्छ कागज पर प्रेम की लेखनी को आंसुओं की स्याही में डुबो कर प्रणय निवेदन करना पड़ता है, विशाल काले बालों की मेघ घटा की छाया तले विश्राम देना पड़ता है, और साधना के नूपुरों से नृत्य कर हमेशा-हमेशा के लिए मुस्कराहट की देह को चरणों में भेंट चढ़ा देनी पड़ती है।

– गुलाब की डाली की तरह लचक कर जब गुरु के चरणों में समर्पित होओगी, तो वही पूजा है, वही ध्यान है, वही धूप है, अगरबत्ती है और आरती है।

– और उन चरणों में डूब जाना, समर्पित हो जाना ही सम्पूर्ण पूजा एवं साधना है।

यह मेरा वायदा है

- मैं आपके साथ हर समय हमेशा-हमेशा के लिए, रहना चाहता हूं, क्या मैं सन्यास ले लूं ?

– सन्यास का तात्पर्य है, मुक्त हो जाना, स्वच्छन्द हो जाना, सब कुछ छोड़ देना।

– खाली भगवे कपड़े पहिनने से सन्यास नहीं हो सकता, पशुओं की तरह जंगलों में भटकने को सन्यास नहीं कहते, सूखे ठूंठ की तरह बैठे रहने की क्रिया को भी सन्यास नहीं कहते।

– सन्यास का मतलब सब कुछ छोड़-छाड़ कर गुरू में विसर्जित हो जाने की क्रिया है, सन्यास का तात्पर्य है, अपने पास कुछ भी न बचा रहे, खुद का शरीर भी नहीं, मन भी नहीं, इच्छा भी नहीं, प्राण भी नहीं, सब कुछ समर्पण कर देने को सन्यास कहते हैं, जैसे बूंद समुद्र में एकाकार हो जाती है, इसी पद्धति को सन्यास कहते हैं।

– मुझसे मिलना तुम्हारे जीवन का आवश्यक तत्व है, इसके बिना तुम अधूरे हो, अपूर्ण हो, विविध वासनाओं के दास बन कर मरघट की तरफ बढ़ रहे हो, इस मरघट तक की यात्रा के बीच श्रेष्ठ पड़ाव गुरू है, जहां से मृत्यु की तरफ नहीं, अमृत्यु की ओर रास्ता जाता है, जहां से हलाहल की ओर नहीं, अमृत की तरफ रास्ता जाता है, जहां से भय की ओर नहीं, निश्चिन्तता, निर्भीकता की ओर रास्ता जाता है।

– और इसके लिये तुम्हें बहुत कुछ छोड़ना पड़ेगा, सन्यस्त होना पड़ेगा, पर पूर्ण रूप से नहीं, नित्य घण्टे दो घण्टे के लिए ही सन्यस्त हो जाइये, इतने समय तक ही गुरू में विसर्जित हो जाइये।

– इतना ही बहुत है, मैं बीच रास्ते में ही तुम्हारी उंगली थाम लूंगा और अमृत्यु, अमृत, ब्रह्म तक तुम्हें पहुंचा दूंगा, यह मेरा वायदा है।

हे री, मेरो दरद न जाणे कोय

● मैं गुरू को पूर्णता के साथ पा लेना चाहती हूं, क्या करूं ?

– तुमने पूर्णता शब्द का प्रयोग किया है, पूर्णता का तात्पर्य है समग्र रूप से, पूर्ण रूप से, देह से, प्राण से, वचन से, शब्द से और जीवन से।

– पूर्णता का तात्पर्य है अपने पास कुछ भी बचा कर न रखना, सब कुछ सौंप देना और निश्चिन्त हो जाना, खाली घट की तरह रिक्त हो जाना, और सब कुछ पा लेना।

– परमात्मा को पा लेना तो फिर भी आसान है, पर गुरू को पूर्णता से पा लेना अत्यन्त कठिन है, दुष्कर है, हिमालय की सर्वोच्च चोटी पर चढ़ने के समान है, आग के दरिया में से नंगे पांव चल कर पार जाने के समान है।

– यह सुगम रास्ता नहीं है, जिनके पांव मजबूत होते हैं, वे ऐसा सोच सकते हैं, जिनकी आंखों में चिनगारी होती है, वे ऐसा निश्चय कर सकते हैं, जिनके हृदय में बगावत का ज्वालामुखी धधक रहा होता है, वे ऐसा कदम उठा सकते हैं, क्योंकि यह रास्ता नंगी तलवार पर चलने के समान है, जहां पैर लहुलुहान हो जाते हैं, पांव खून से रंग जाते हैं, पर फिर भी चेहरे पर मुस्कराहट रहती है, आंखों में विजय का भाव होता है, जीवन के सागर में खुशी की लहरें उछालें मारती है।

– और फिर तुम्हें रोका किसने है, सुगन्ध को फूल के इर्द-गिर्द लिपटने से कौन रोक सकता है, सूर्य की किरणों को पृथ्वी को चूमने से कौन वरज सकता है, वसन्त के गले में गलबांहें डालने से कलियों को कौन रोक सकता है, मेघों से बात चीत करने से मयूरी को कौन बांध सकता है, और मानसरोवर रूपी प्रियतम में पूरी तरह से डुबकी लगाने से हंसिनी को कौन वरज सकता है।

– देर किस बात की है, पहले से ही बहुत देर हो चुकी है, ब्रह्म में पूर्ण लीन हो जाने, निश्चय करने, बढ़ने, वेग के साथ चलने और वासन्ती हवा की तरह लहराकर दौड़ने के लिए यही समय है, यही तो क्षण है, अब चूक गये, तो फिर उमर भर के लिए चूक ही गये।

—●—

कल न पड़त, पल-पल मग जोवत

● **मैं तो आपकी राह देखते-देखते थक गई हूं गुरुवर ! क्या श्राप इतने निष्ठुर हैं ?**

– राह देखने के लिए ही होती है, जिनके जीवन का सौभाग्य होता है, उसी की श्रांखों में कोई वसता है, उसी के नयनों में इन्तजार के श्रक्षर लिखे होते हैं, उसी को विरह की सौगात मिलती है, श्रौर यह सौगात मूल्यवान है, जिसे दिल के हजार-हजार पर्दों के बीच छिपा कर रखना पड़ता है ।

– विरह तो जीवन का सौभाग्य है, मन की मस्ती है, श्रानन्द की हिलोर है, दिल का उछाह है, जो प्रत्येक के नसीब में नहीं होता, जो घिसी-पिटी जिन्दगी व्यतीत करना चाहते हैं, वे इस शब्द का श्रर्थ नहीं समझ सकते, जो कायर श्रौर बुझदिल होते हैं, वे इस शब्द से कोसों दूर भागते हैं, जो गुलामों की तरह जिन्दगी जीने के श्रादी हो चुके होते हैं, उन्हें विरह की यह सौगात प्राप्त नहीं होती ।

– मिलन तो एक क्षण का सुख है, मिला, श्रौर सब कुछ एक क्षण में समाप्त हो गया, पर विरह तो पूरा का पूरा महाकाव्य है, जिन्दगी का विशाल ग्रन्थ है, जिसके एक-एक पन्ने पर मधुर स्मृतियों के श्रक्षर अंकित होते हैं, विरह तो वासन्ती बयार है, जिसके रेशे-रेशे में खुशबू का एहसास लिखा होता है, विरह तो प्रणय की श्रनलिखी कहानी है, जो रामायण से भी श्रेष्ठ श्रौर गीता से भी ज्यादा पवित्र है ।

– क्योंकि संसार में मिलन तो क्षण भंगुर होता है, श्रमर तो विरह होता है, हजारों-लाखों ग्रन्थ विरह पर लिखे हैं, सूर, रैदास, कबीर, मीरा के एक-एक शब्द में तड़फ है, विरह की सिसकारी है, वियोग की उच्छ्वास है, तभी तो वह महान हैं, तभी तो वह श्रद्वितीय हैं ।

– यह निष्ठुरता नहीं विरह की परीक्षा है, तुम्हारे हृदय की गहराई का मापदण्ड है, तुम्हारी पथराई हुई श्रांखों की परिभाषा है, तुम्हारे श्रांसुश्रों से लिखा प्रणय ग्रन्थ है ।

– श्रौर अगर यह सब कुछ है, तो मैं तुम्हें बधाई देता हूं, कि तुम पूर्णता के निकट····श्रत्यन्त सन्निकट हो ।

प्रेम को पंथ कठोर कराल, तलवार की धार पे धावनो है

● क्या मैं प्रेम के बारे में कुछ जान सकता हूं आपसे ?

– तुम किसी के बारे में कुछ भी जान सकते हो, क्योंकि तुम मेरे आत्मीय हो, और उसे सब कुछ प्राप्त करने का अधिकार होता है ।

– मगर इसके लिए निकट जाना होता है, शिष्य बनना पड़ता है, उपनिषद होने की क्रिया अपनानी पड़ती है, और नजदीक जाते जाते उसमें समा जाना पड़ता है, एक दृष्टा बन जाता है, एक लयता हो जाती है, इसी को डूबना कहते हैं, इसी को समर्पण कहते हैं, इसी को शिष्यता कहते हैं ।

– और अगर मेरा शिष्य है, और उसमें प्रेम तत्व नहीं है, तो वह मेरा शिष्य हो ही नहीं सकता, मेरा तो पूरा जीवन प्रेम का मानसरोवर है, इसमें से जो भी नदियां निकलेंगी, जो भी जलधाराएं फूटेंगी, वे प्रेम की ही होंगी, क्योंकि मेरी दृष्टि में प्रेम और शिष्य दोनों एक ही अर्थ के परस्पर पूरक हैं ।

– पर प्रेम देह तक ही सीमित न हो, प्रेम में वासना की दुर्गन्ध न हो, प्रेम में क्षुद्रता और ओछेपन की सड़ांध न हो, प्रेम में स्वार्थ और गरूर का मटमैलापन न हो, प्रेम तो मधुर, कलकल, छलछल बहती हुई नदी की धारा है, जिसकी प्रत्येक तरंग प्रेम का ही गीत गाती है, प्रेम तो वासन्ती बहार है, जिसके रेशे-रेशे में प्रेम की धीमी मादक सुगन्ध है, प्रेम तो बांस की स्नेहिल बांसुरी है, जिसमें मधुरता के स्वर ही उच्चरित होते हैं, प्रेम तो कोयल की कुहुक है, जो मन प्राण को अपने संगीत से सराबोर कर देती है ।

– क्योंकि प्रेम तो मानवता की पायल है, जिसके खनकने से माधुर्यता फिजा में तैर जाती है, वह तो शंख की मधुर ध्वनि है, जो देवताओं के चरणों में अर्पित होती है, प्रेम तो देह की सजी हुई थाली है, जो गुरू चरणों में समर्पित होती है, लीन हो जाती है, विसर्जित होती है ।

– अगर प्रेम नहीं है, तो पूजा नहीं है, बिना प्रेम के मन्दिर श्मशान की तरह शून्य है, बिना प्रेम के देवता पाषाण की निर्जीव मूर्तियां हैं, बिना प्रेम के अर्चन-पूजन ईश्वर का अपमान करना है, गुरू का निरादर करना है ।

– और मेरी एक आवाज है, एक ही शब्द है, एक ही मन्त्र है, एक ही सन्देश है, कि तुम प्रेममय बनो, प्रेम सिक्त बनो, सम्पूर्ण अर्थों में प्रेम ही बन जाओ .... यही तो ब्रह्म से साक्षात्कार है ।

—●—

काल के भाल पर आंसुओं का राज-तिलक

● **जब से मैं आपसे बिछुड़ी हूं आंसू थमते ही नहीं, रोकने की कोशिश भी करती हूं, पर फिर भी रुलाई फूट पड़ती है और आंसू छलछला आते हैं।**

– तुम पागल हो, इनको रोकने की कोशिश करती ही क्यों हो, इनको तो उन्मुक्त भाव से बहने दो, निर्द्वन्द्व निर्बाध गति से गतिशील होने दो, इनके बीच में अवरोध पैदा करना प्रभु-मिलन के मार्ग में रुकावट डालना है।

– आंसू जीवन्तता के परिचायक हैं, वृद्ध लोगों की आंखों में आंसू नहीं आते, क्योंकि उनकी आंखें सूख जाती हैं, क्योंकि उनका हृदय रस रिक्त हो चुका होता है, क्योंकि उनके जीवन की पूंजी समाप्त हो चुकी होती है।

– और आंसू न आना अपूर्णता का सूचक है, इस बात का द्योतक है, कि यह जीवन की लड़ाई हार चुका है, यह जीवन के मधुर रस से रिक्त हो चुका है, यह प्रसन्नता के खजाने से शून्य होकर निर्धन हो चुका है।

– क्योंकि आंसू जीवन की प्रणय-गाथा है, ब्रह्म तक पहुंचने की पगडंडी आंसुओं से ही निर्मित होती है, जीवन का इतिहास आंसुओं के छन्दों से ही लिखा जाता है, विरह के गीत आंसुओं के पन्नों पर ही अंकित होते हैं, प्रेम का पौधा आंसुओं के जल से ही सींचा जाता है।

– इसके लिए तो तुम्हें अपने तकदीर की सराहना करनी चाहिए, कि आंसुओं के छन्दों से तुम गीत गा सकती हो, अश्रुओं की पंक्तियों से विरह व्यथा को स्पष्ट कर सकती हो, बड़े-बड़े मोतियों से हृदय को सजा कर उस पर गुरू को बिठा सकती हो, निर्मल छलछलाती हुई आंसुओं की धारा में स्नान कर पवित्र हो सकती हो, और प्राणों के साथ समर्पित हो कर ब्रह्म में लीन हो सकती हो।

– इसलिए इन आंसुओं को रोकने की कोशिश मत कर, इन्हें तो छल-छलाती हुई नदी की तरह बहने दे ...यही तो पूर्णता है।

—●—

जीवन ! तूं भरमावे मोय

● मैं एक बात नहीं समझ पाई हूं गुरुदेव ! कि आखिर "जीवन" क्या है ?

- जीवन एक रोमांच है, थिरकन है, परमात्मा का भावपूर्ण नृत्य है, उमंग है, जोश है, और ब्रह्माण्ड की सर्वश्रेष्ठ ईश्वरीय कृति है।

- पर मूढ़ लोगों के लिए जीवन जन्म से ले कर मृत्यु तक की यात्रा है, जो धीरे-धीरे उलझनों में फंसता हुआ, परेशानियों से घिरता हुआ, आपा-धापी के धक्के खाता हुआ, मृत्यु की गोद में समा जाने की क्रिया है।

- और ऐसे लोग ब्रह्माण्ड का भाग नहीं हो सकते, ऐसे लोग ईश्वरीय नृत्य की थिरकन नहीं हो सकते, ये लोग तो चलते-फिरते सजीव मुर्दे हैं, जो अपने जीवन की लाश कन्धों पर ढोते हुए श्मशान की ओर निरन्तर गतिशील हैं, ऐसे लोग जिन्दा होते हुए भी मुरदे की तरह हैं, बेजान हैं, व्यर्थ हैं, पृथ्वी पर भार स्वरूप हैं।

- पर जीवन तो सही अर्थों में देखा जाय, तो जोखिम है, जो बहुत कम लोग उठा पाते हैं, यह तो जीवन का रोमांच है, सिहरन है, पुलक है, जो सौभाग्यशाली व्यक्तियों के नसीब में ही विधाता सोने की कलम से लिखती है।

- जिसने जीवन समझ लिया है, वह तूफानों से घबराता नहीं, झंझा-वातों से विचलित नहीं होता, अंधड़ से उसकी आंखें बन्द नहीं होती, भूडोल से उसके पांव लड़खड़ाते नहीं, वह क्रान्ति की साक्षात् मिसाल होती है, जो मौत की आंखों से आंखें मिलाने की हिम्मत रखती है, काल के पांव कुचल कर आगे बढ़ने की क्षमता रखती है, जो बिजली बन कर कड़कती हुई समाज पर प्रहार कर सकती है, और जो चैलेंज के साथ जिन्दगी को अपने प्राणों में गुरू को बसा कर अमृत्यु की ओर मुस्कराहट के साथ बढ़ सकती है, उसे जीवन कहते हैं।

- और यही जीवन की वास्तविकता है।

- **मैं साधना में, ध्यान में और आप में डूब जाना चाहती हूं, पर घर वालों ने व्यंग बाणों से मुझे छेद दिया है, दुखी हो गई हूं इनकी जहरीली कटूक्तियों से ....**

– डूब जाना पूरी जिन्दगी की शानदार और बेमिसाल घटना है, जो जीवन में एक बार ही घटती है, और जिसके जीवन में यह घटना घट जाती है, वह निहाल हो जाता है, धन्य हो उठता है, प्रभु का वरदान उसे प्राप्त हो जाता है।

– और तुम में डूबने की क्षमता आई, यह तो दुःख का विषय नहीं, उल्लास और आनन्द का उत्सव है, तुम्हें तो आत्मविभोर हो जाना चाहिए था, कि प्रभु ने तुम पर इतनी बड़ी कृपा की, तुम्हें ऐसा वरदान दिया, पूरी तरह से डूब जाने की कला दी।

– और पृथ्वी पर बहुत ही कम लोगों को प्रभु ने ऐसा वरदान दिया है, और जिसे यह वरदान मिला, उसका नाम इतिहास में हमेशा-हमेशा के लिए अंकित हो गया, राधा कृष्ण के प्रेम में डूबी और निहाल हो गई, मीरा घुंघरू बांध कर कृष्ण के सामने थिरकी, और मस्त हो गई, निहाल हो गई।

– यह डूब जाना मामूली घटना नहीं है, जिनकी आंखों में लपक होती है, वही इस पथ पर चल सकती है, जिसकी आंखों में दृढ़ निश्चय की चिनगारी होती है, वही इस रास्ते पर कदम रख सकती है, क्योंकि यह रास्ता तलवार की तेज धार के ऊपर से होकर जाता है, और जो इस रास्ते पर गतिशील होता है, उसके पैर लहुलुहान हो जाते हैं, जमीन पर खून से रंगे उनके पैरों की छाप अंकित हो जाती है, उसे जहर का प्याला पिलाने के लिए विवश किया जाता है, उसे पिटारी में सांप भर कर भेंट किये जाते हैं, लांछनों और अपमानों के तीक्ष्ण बाणों से उसका शरीर छिद जाता है, और समाज भेड़ियों की तरह उस हिरणी पर झपट पड़ने के लिए आतुर हो उठता है।

– पर ऐसा तो होना ही था, ऐसा हो रहा है, यह प्रसन्नता की बात है, क्योंकि तुममें 'कुछ' है, जो समाज के पास नहीं है, तुम कुछ ऐसा करने जा रही हो, जो कायर और बुजदिल समाज करने की हिम्मत नहीं रखता, तुम में कुछ नवीनता देखी है, और समाज बौखला गया है।

– और पागल तथा बौखलाया समाज इससे ज्यादा कर भी क्या सकता है? मेरा साधुवाद स्वीकार करो, कि तुम डूबने की कला सीख पाई, नमन हो पाई, गुरू में विसर्जित हो पाई।

इन अंखियन बिन कहां बसूं सखि !

● **गुरुदेव ! आप बुरा न मानें तो एक बात कहूं, आपकी आंखें झील सी गहरी और अत्यन्त सुन्दर हैं, मैं देखती हूं, तो देखती ही रह जाती हूं उन्हें, ऐसा क्यों है ?**

– ऐसा क्यों नहीं हो, तुमने मेरी आंखें देखी है, और उसमें खो गई, यह तो तुम्हारा सौभाग्य है, तुम्हारे जीवन का उत्थान और प्राणों की चेतना है, तुम्हारे जीवन का मूल और आत्मा का अनहद नाद है ।

– और तुम इन आंखों में इसलिए खो जाती हो, कि ये मेरी आंखें नहीं, तुम्हारे हृदय की धड़कने हैं, तुम्हारे दिल की सितार है जिसकी ध्वनि तुम्हें एहसास होती है, तुम्हारे प्राणों का स्वर्गिक संगीत है, जिसे तुम्हारे शरीर की हजार-हजार आंखें, शरीर का रोम-रोम कान बन कर सुनता है, और इसीलिये तुम खो जाती हो ।

– और ये मात्र दो आंखें ही नहीं हैं, इनमें राम का शील है, कृष्ण की बौद्धिकता है, चैतन्य का नृत्य है, शंकराचार्य का ज्ञान है, महावीर की चेतना है, और बुद्ध की पूरी की पूरी करुणा का अथाह सागर है, जिसमें तुम बहती ही चली जाती हो ।

– ये आंखें मात्र मेरी आंखें ही नहीं, तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन एवं सौन्दर्य का प्रतिविम्ब है, जिसे तुम निहार कर धन्य हो उठती हो, यह तुम्हारा खुद का स्वरूप है, जिसे देख कर तुम बेसुध सी हो जाती हो, यह तुम्हारे विशुद्ध निर्मल प्रेम का निर्झर है, जिसे देख कर तुम अपनी सुध-बुध भुला बैठती हो, यह तो तुम्हारे हृदय का मानसरोवर है, जिसमें तुम हंसिनी बन कर गहराई के साथ डुबकी लगाती हो, और अपने आप को भुला बैठती हो ।

– ये मेरी आंखें हैं ही कहां, ये तो तुम्हारे प्राणों का, जीवन का, सौन्दर्य का, सजगता का, चेतनता का, प्रेम का, मधुरता का और तुम्हारे हृदय का प्रतिविम्ब है, धड़कन है, तभी तो तुम खोती हो इस में ।

– और अपने आप में खो जाना ही जीवन की पूर्णता है ।

हृदय ने धड़कना छोड़ा और वो सामने खड़े थे

● **बड़ा अजीब सा होने लग गया है गुरुदेव, आपके पास से आने के बाद तो बावरी सी हो गई हूं, ऐसा लगता है कि जैसे हृदय ने धड़कना ही बंद कर दिया हो ।**

– यदि सच कहूं तो इतिहास में बहुत कम गिने चुने नाम ही अंकित हुए हैं जिन्हें इतिहास ने 'बावरी' शब्द से संबोधित किया है, रुलिया, श्रुतकीर्ति, पुष्पधन्वा, राधा और मीरा जैसी विभूतियां ही थीं जिन्होंने इस शब्द का आनन्द लिया और अपने जीवन में उतारा ।

– और यह तब होता है, जब बूंद हुलस कर समुद्र में लीन हो जाती है, यह तब होता है, जब हंसिनी अपने पूरे पंख फैला कर विस्तृत आकाश में उड़ान भरने लग जाती है, यह तब होता है, जब बेल अपनी पूरी चेतना के साथ पेड़ के इर्द गिर्द लिपट कर आनन्द विभोर हो उठती है और यह तब होता है, जब देह को त्याग कर प्राणों में कोई गहराई के साथ उतर जाता है ।

– जब कोई उतर जाता है, तो बाहरी दुनियां से उसका नाता टूट जाता है, बाहर के दरवाजे बन्द हो जाते हैं और हृदय के कपाट पूरी तरह से खुल जाते हैं, तब केवल वह होती है और मात्र उसके प्राणों में बसा हुआ "गुरू" आत्म, चैतन्य और जीवन्त उपस्थिति ।

– फिर वह उसी के साथ बात करती है, बात करती-करती हंसने लग जाती है, हंसते-हंसते आंसू छलछला आते हैं, आंसुओं के बीच मुस्कानें तैर जाती हैं, और वह उठ कर नाचने लग जाती है, थिरकने लग जाती है, अपने प्राणों के साज पर आत्मा का अभिनय नृत्य प्रारम्भ हो जाता है, और नृत्य करते-करते थक जाती है, तो अपने प्राण स्वरूप चैतन्य के सामने पसर जाती है, इसी को मूर्ख और अज्ञानी लोग "बावरी" कहते हैं, और योगी जन इसे सिद्ध आत्मा ।

– और फिर तुम्हारे हृदय ने धड़कना बन्द कर दिया है, तो वह तुम्हारे पास है ही कहां ? वह तो मेरे पास सुरक्षित है, मेरे हृदय की धड़कनों के साथ धड़क रहा है, फिर तुम्हें चिन्ता किस बात की ?

—●—

अंसुवन ढुरकत प्रेम के

● **कभी-कभी आपकी याद आने पर मन में गहरी टीस उठती है, और विरह के दर्द से छटपटा उठती हूं और आंखों से आंसुओं की धार........**

– तुमने वाक्य अधूरा छोड़ दिया, और इस अधूरे वाक्य ने वह सब कुछ कह दिया, जो तुम नहीं कह सकी, नहीं लिख सकी, नहीं व्यक्त कर सकी ।

– और यह प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारे हृदय में टीस उठी, टीस उसी को उठती है जिसके पास हृदय होता है, टीस उसी को उठती है, जो जागता है, चैतन्य होता है, जाग्रत होता है ।

– और तुम जाग्रत हो उठी हो, यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है, पत्थरों में टीस नहीं उठती, बेजान कंकरों को टीस का एहसास नहीं होता, मुर्दा शरीरों को टीस व्याप्त नहीं होती । टीस उठी, इसलिए कि तुम जाग्रत हो, टीस उठी और यह प्रमाणित हो गया कि तुम चैतन्य हो, टीस उठी और मुझे विश्वास हो गया, कि तुम्हारे मुर्दा शरीर में हलचल हुई है, चेतना पैदा हुई है, दिल धड़का है, दिल ने आवाज दी है, दिल ने अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है ।

– यह तो तुम्हारे लिए सौभाग्य की बात है, और फिर विरह तो प्राणों की झंकार है, जिन्दगी की धड़कन है, चेतना का आत्मिक संगीत है, अगर जिन्दगी में विरह ही न हो तो जिन्दगी में रखा ही क्या है, विना विरह के तो जीवन निस्पन्द है, मुर्दा है, बेजान है, व्यर्थ है ।

– विरह तब उठता है जब कोई आंखों के रास्ते से चुपचाप प्राणों में उतर जाता है, और तुम्हारे साथ ऐसा हुआ कि गुरू तुम्हारे प्राणों में उतर गये, यह तो भाग्य की वात है, सौभाग्य की घड़ी है, अगर विरह का दर्द तुम्हें सौगात के रूप में मिला है, तो उसे प्रसन्नता से स्वीकार करो, अपने भाग्य की सराहना करो, अपने जीवन को धन्यता दो ।

– और प्रात: काल उठ कर देख लेना, आंसुओं की धार ने तकिये पर तुम्हारे गुरू का चित्र ही अंकित किया होगा, क्योंकि उसे तुमने अपने प्राणों में उतारा है, प्राणों को चैतन्यता दी है, झंकृत किया है ।

– और इसके लिए मेरा साधुवाद स्वीकार करो, कि ऐसा हुआ ।

पद्मगंध तन मन रची

● पिछली नवरात्रि के अवसर पर मैं और अन्य जब भाव विभोर हो कर आपके सामने नृत्य में लीन थे, और नृत्य करते-करते जब आपके पास से गुजरते, तो एक अजीब सी मादक सुगन्ध नथुनों में, मन प्राणों में भर जाती और मैं और ज्यादा उन्मत्त हो कर नाचने लग जाती, मैं ही नहीं अन्य भी जो नाच रहे थे, उन सब ने ऐसा अनुभव किया ..... यह क्या था प्रभु ?

– यह पहिचान है गुरू की, उसके गुरूत्व की, कि उसमें 'ब्रह्म' पूर्ण रूप से विराजमान है, यह मानव की गन्ध नहीं, ब्रह्म की मादक अपूर्व सुगन्ध है, यह केवल गन्ध ही नहीं, 'पद्मगन्ध' है, जो उसी के शरीर से प्रवहित होती है, जिसने ब्रह्म को पा लिया है, जिसने ब्रह्म को चीन्ह लिया है, जो ब्रह्म से एकाकार हो गया है।

– और इस गन्ध से – पद्मगन्ध – से पहिचान होती है, गुरू और अगुरू की, इसी गन्ध से पहिचान होती है, उच्चकोटि के ब्रह्म अध्येता और साधारण मनुष्य की, इसी पद्मगन्ध से जाना जाता है, भेद किया जा सकता है जीव और ब्रह्म में।

– जो सही अर्थों में गुरू है, जिसने सही अर्थों में ब्रह्म को आत्मसात कर लिया है, उसके शरीर से एक मादक, पागल बना देने वाली अपूर्व अद्वितीय गन्ध निरन्तर प्रवहित होती रहती है, कृष्ण के शरीर से ऐसी ही पद्मगन्ध निसृत होती थी, जिससे गोपियां पागल हो कर, लोक लाज खो कर, बेसुध सी नृत्य करती रहती थीं, और तब तक नृत्य करती रहती थीं, जब तक कि वह ब्रह्म में लीन न हो जांय, एकाकार न हो जांय।

– पर साधारण, ओछे, घटिया और तुच्छ व्यक्तियों को यह सुगन्ध एहसास नहीं होती, वह गुरू के पास जाता भी है, तब भी उसे इस गन्ध की चेतना का अनुभव नहीं होता, क्योंकि वह गंदा और मलिन शरीर लिये हुए खड़ा होता है, क्योंकि वह तुच्छता अहं और ओछेपन के भुरभुरे ढूहे पर खड़ा है, ऐसे व्यक्ति और पशु में कोई अंतर नहीं होता, और ऐसे व्यक्ति को यह सौभाग्य भी अनुभव नहीं होता, कि वह इस देवोपम देव दुर्लभ सुगन्ध को एहसास करें, अपने शरीर के इर्द गिर्द लपेट ले, अपने नथुनों और प्राणों में भर ले .... और मस्त हो जाय, छक ले, तृप्त हो जाय, लीन हो जाय, गुरू में विसर्जित हो जाय।

– और तुम्हें ऐसा अनुभव हुआ, यह तुम्हारे लिए उत्सव का क्षण है, सौभाग्य का पर्व है, आनन्द का दिन है।

—●—

इह तन को दियरो करूं

● 'आपने मुझे इतना दे दिया है, कि मैं समझ नहीं पा रही हूं, कि आपको क्या दूं, 'धन्यवाद' शब्द तो इसके बदले में बहुत छोटा सा बन कर रह जाता है।

– तुम कुछ दे भी नहीं सकती, और देने की कुछ जरूरत भी नहीं है, गुरु को कुछ देने की क्रिया नहीं है, उनसे लिया जाता है, बहुत कुछ.... सब कुछ .... प्राण... आत्मा .... धड़कन, चेतनता, ज्ञान और आनन्द।

– इसलिए इस बात की चिन्ता मत करो, कि तुम गुरु को कुछ दे नहीं पा रही हो, तुम्हारे पास देने के लिए बचा ही क्या है, जो आनन्द, जो उल्लास, जो देह और जो प्राणों की धड़कन तुम्हारे पास है, वह तो मेरी दी हुई है, मैंने तो तुम्हारे पास केवल अमानत के रूप में रखी है, जिसे तुम सम्भाल कर रख सको, उसकी सुरक्षा कर सको, और जब मैं वापिस मांगूं, तो खुशी-खुशी मुझे लौटा सको।

– और फिर 'धन्यवाद' इन सांसारिक पुतलों के होठों से फिसल-फिसल कर इतना घिसा-पिटा शब्द बन गया है, कि वह अपनी अर्थवत्ता ही खो बैठा है, वह तो एक औपचारिक, तुच्छ, घटिया सा शब्द बन कर रह गया है, जो फुटबाल की भांति ठोकरों में इधर-उधर लुढ़कता रहता है।

– तुम दे सको, तो आंखों के शंख में अश्रुजल भर कर अर्घ्य प्रदान करो, होठों पर गुरुदेव का शब्द अंकित कर मुस्कराहट के साथ उसे भेंट करो, प्राणों में गुरुदेव का चित्र अंकित कर उसे भेंट करो, पैरों में नूपुर बांध कर उसकी झंकार में गुरुदेव की स्तुति गान रचना कर सको, अपनी थिरकन और मस्ती की लेखनी से जीवन का इतिहास लिख कर समर्पित कर सको, अपसे हृदय की गुलाबी पंखुड़ियों पर गुरु को बिठा कर उसे विश्व के सामने प्रस्तुत कर सको, अपनी जिन्दगी की सितार पर गुरु-संगीत को उच्चरित कर सको, नृत्य कर सको, थिरक सको, लीन हो सको, पूर्ण रूप से समर्पित हो सको, और ब्रह्म में एकाकार हो सको....क्या यह कम है ?

संतो, सहज समाधि भली

● **आपने अपने प्रवचन में ध्यान के बारे में कुछ कहा था, क्या इसे थोड़ा सा स्पष्ट करेंगे ?**

– ध्यान तो जीवन का सौभाग्य है, पूरे शरीर की ऊर्जा का केन्द्रीभूत स्वरूप है, अपने आत्म से साक्षात्कार का सर्वोत्तम उपाय है।

– और इसके लिए जरूरी है मौन, निश्चल मौन, ऐसा मौन, जिसमें शरीर में कोई हलचल न हो, कोई चेतना न हो, क्योंकि तुम बाहिर से कट चुके होते हो, तुम्हारा अस्तित्व बाहरी जगत से रहता ही नहीं, क्योंकि बाहिर से कटोगे तो भीतर से जुड़ोगे।

– और इसी मौन को लेकर शरीर के अन्दर नीचे की ओर उतरो, गहरे, और गहरे, पूरी गहराई के साथ, पूरी गंभीरता, निश्चलता और निश्चेष्टता के साथ।

– और यह मौन तुम्हें नाभि स्तल तक ले जायगा, जब तुम नाभि के मूल तक पहुंच जाओगे, तो थोड़ा और नीचे खिसकने की जरूरत है, नाभि से मात्र तीन अंगुल नीचे तक।

– यही मूलाधार है, यही ध्यान का आधारभूत केन्द्र है, यहीं तक पहुंचना तुम्हारा उद्देश्य और लक्ष्य है, इस स्थान तक पहुंचने की क्रिया को ही 'मूलाधार जागृति' कहते हैं।

– और यह परमावस्था है, एक ऐसी अवस्था है जिसे योगी जन "तुरीयावस्था" कहते हैं, इस अवस्था तक पहुंचने पर सब कुछ समाप्त हो जाता है, बाहर का कोई बिम्ब, कोई अस्तित्व नहीं रहता, तुम भी नहीं रहते, केवल तुम्हारा साक्षीभूत रहता है।

– और यह साक्षीभूत ही बूंद का समुद्र में विसर्जन है, यह साक्षीभूत ही अपने प्राणों में गुरू का पूर्ण रूप से समावेश है, यह साक्षीभूत ही बुद्धत्व को पूर्ण रूप से प्राप्त करना है, और इसी को ध्यान कहते हैं।

पिव! पिव!! प्यास बढ़ी

● **गुरुवर ! स्पष्ट और दो टूक कहने के लिये क्षमा करें, मैं आपको प्रेम करने लगी हूं, आपसे जितनी ही दूर रहने की कोशिश करती हूं, उतनी ही प्यास बढ़ती जाती है, दर्द और तड़प बेंध डालते हैं तन, मन और प्राणों को....।**

– तो इसमें गलत क्या कर रही हो, इतनी सी बात कहने के लिए इतनी अधिक झिझक क्यों, संकोच क्यों, उहापोह और भ्रम क्यों ?

– प्रेम तब गंदा और गलीच होता है जब देहगत हो, वासनायुक्त हो, छलयुक्त और स्वार्थयुक्त हो, जहां शुद्धता से प्राणों के साथ प्रेम का आदान-प्रदान है, वहां घबराना क्या और विचलित होना कैसा ?

– यह तो तुम्हारे जीवन का सौभाग्य है कि तुममें प्रेम के अंकुर फूटे, ईश्वर को धन्यवाद दो, कि तुम्हारे जीवन में प्रेम की बेल लहराई, अपने आपको सौभाग्यशाली समझो, कि तुमने प्रेम का आस्वादन किया, प्रेम को एहसास किया प्रेम को गति दी, उसे जीवन दिया, उसे धड़कन दी ।

– जो पत्थर होते हैं, उन्हें प्रभु यह वरदान नहीं देता, जो कायर और बुझदिल होते हैं, वे अपने होठों पर प्रेम का नाम लेने से घबराते हैं, जो कायर होते हैं, वे प्रेम शब्द से भयभीत होकर दूर खड़े होते हैं, ऐसे मुर्दों के लिए यह दुनियां नहीं है, ऐसे धृतराष्ट्रों के जीवन में वसन्त नहीं खिलता, जिसकी आंखों पर समाज की बदनामी की पट्टी बंधी होती है, वह मुस्कराते हुए गुलाब को देख ही कैसे सकती हैं, जो नाली के कीड़े होते हैं उनके पास प्रेम नहीं फटकता ।

– और जो प्रेम करने की कला सीख गये हैं, वे दूर रह ही नहीं सकते, काल और दूरी की सीमा जहां पर समाप्त होती है, वहीं से प्रेम का उदय होता है, जो कांटों पर नंगे पांव चलने की तैयारी करते हैं, वे ही प्रेम के मर्म को पहिचान सकते हैं, जो समाज की आलोचनाओं के सुन्दर हार गले में धारण करने की सामर्थ्य रखते हैं, उन्हीं के चरण प्रेम की पगडंडी पर गतिशील होते हैं, इसलिए इसमें तो जितना ही दूर भागने की कोशिश करोगी, उतनी ही नजदीक अनुभव करोगी ।

– और तुमने प्यास की बात कही, यह तुम्हारे प्राणों की प्यास है, यह लौकिक अतृप्ति नहीं है, आत्मा की प्यास है, जो अन्दर बैठा है, उसकी धड़कनों की प्यास है, जिस गुरू को अन्दर बिठा रखा है, उसके पांव प्रक्षालन के अश्रु हैं, यह दर्द उनकी आरती है, यह बेचैनी उनके गले में पहिनाने का हार है, यह तड़फ उनके प्रति समर्पण की क्रिया है ।

– स्पष्ट हो गया है, कि तुम देह तत्व से निकलकर प्राण तत्व में आगे की ओर अग्रसर हो रही हो, और यह तुम्हारा सौभाग्य है ।

बिन बादल बरसत अमी

- **आपके जन्म दिवस का दृश्य अभूतपूर्व था, ऐसे कि जैसे पृथ्वी पर सचमुच का स्वर्ग उतर आया हो, और तभी आप प्रगट हुए, और हजारों आंखें आप पर टिक गईं, मैंने देखा कि उपस्थित सभी शिष्य और मैं भी आपको देख नहीं रहे थे, पी रहे थे .... ।**

– गुरू देखने की वस्तु ही नहीं, वह तो अमृत का छलकता हुआ प्याला है, जिसे पीने से ही प्यास बुझती है, और सही अर्थों में प्यास बुझती नहीं, और भड़कती है, जी चाहता है कि यह प्याला यों ही लबालब भरा रहे, और शिष्य पीते रहें, छकते रहें, तृप्त होते रहें ।

– गुरू ही सही अर्थों में इस पृथ्वी पर स्वर्ग है, क्योंकि पृथ्वी तो छल, झूठ, कपट से आच्छादित है, पृथ्वी का कण-कण तो जहर से बुझा हुआ है, हलाहल से आच्छादित है, और जहां जहर है, वहां आनन्द कैसे अनुभव हो सकता है, वहां मस्ती कैसे आ सकती है, वहां तृप्ति कैसे मिल सकती है ?

– गुरू तो सही अर्थों में कल्पवृक्ष की शीतल छाया है, जिसके तले सुस्ताने से आनन्द की अनुभूति होती है, गुरू ही तो मानसरोवर का स्वच्छ जल है, जिसमें हंस-हंसनियां किलोल करते रहते हैं, गुरू ही तो वासन्ती बयार है, जो नथुनों में भरकर व्यक्ति को उन्मत्त बना देती है, वही तो सही अर्थों में अमृतकुण्ड है, जिसे पीकर प्राणों में गहराई के साथ उतरा जा सकता है, वही तो बुद्धत्व है जिसके किनारे चिरशांति है, समाधि है, ध्यान की गहराई है ।

– और हजारों आंखें मेरे ऊपर टिकीं, तो यह उनका अहोभाग है, सौभाग्य है, कि उन्होंने अपने जीवन में गुरू को निहारा, आंखों से अपने प्राणों में उतारा, हृदय तंत्री पर स्वर उच्चरित किया, होठों पर गुरू नाम गुनगुनाहट के साथ उभारा, और प्राणवायु पूरी तरह प्राणों में उतर गई, हृदय पर अंकित हो गयी ।

– और तुमने इस क्षण को गहराई के साथ जिया, तेरी पूरी जिन्दगी का यह क्षण और केवल यही क्षण सार्थक था, जब तुमने निहारा और ठक से रह गई, देखा और प्राणों में उतर गया, बोला और होठों पर गुरू का नाम स्वर्णाक्षरों में लिख लिया गया ।

– और जो तेरे होठों पर समय ने गुरू का नाम इस क्षण लिखा, ध्यान रहे, यह नाम होठों पर से मिट न जाय ।

ना जिये मछरी नीर बिनु

● **गुरुदेव ! कई कठिनाइयां हैं, बार-बार हम आपके पास आ नहीं पाते, और आये बिना रहा नहीं जाता .... पर कोई सन्देश तो हो आपका, जो हर क्षण हमारे साथ रहे ।**

– सन्देश उसको दिया जाता है, जो दूर हो, प्राणों से अलग हो, जिसका मूल्य, महत्व और अस्तित्व अलग हो, पर जो प्राणों में ही बस गया है, जो तुम्हारी जिन्दगी की ही एक धड़कन बन गया हो, जो तुम्हारे शरीर में बहते हुए रक्त का कण बन गया हो उसका क्या सन्देश ? उससे क्या सन्देश ?

– अगर सन्देश है तो इतना ही, कि बाहर-बाहर से ही मुझे मत देखो, बाहरी शरीर को ही गुरू मत समझो, अपितु मेरे अन्दर झांको, मेरे अन्दर निहारो, इस मानसरोवर में गहराई के साथ डुबकी लगाओ, इतनी गहराई के साथ, कि तुम अन्तस्तल तक पहुंच सको, अन्दर की गहराई छू सको, अन्दर की तलछटी पर अपने पांव टिका सको ।

– समुद्र के किनारे बैठे रहने वाले को घोंघे ही हाथ लगते हैं, वह मुट्ठी भी भरता है, तो उसके हाथ कंकर ही लगते हैं, जो डरते हैं, समुद्र में कूदने से घबराते हैं, वे कायर घोंघे और कंकरों के अतिरिक्त पा ही क्या सकते हैं ?

और इसीलिए मैं कहता हूं, कि बिना हिचकिचाहट के इस गुरू रूपी समुद्र में छलांग लगा दो, किनारे पर खड़े हो कर सोचने की जरूरत नहीं, किनारे पर खड़े हो कर विचारने और निर्णय लेने की जरूरत नहीं, निर्णय तो तुम ले चुके, अब तो साहस करके छलांग लगाने की जरूरत है, अब तो बिना हिचकिचाहट के बीच समुद्र में उछाल भरने की जरूरत है, गहराई के साथ अन्तस्तल तक जाने की जरूरत है, और वहां तुम्हें कंकर पत्थर नहीं, मोती मिलेंगे, रत्नों का विपुल भण्डार मिलेगा, एक नई दुनियां, एक नया लोक, एक नया संसार तुम्हें प्राप्त होगा, जो अद्वितीय है, अनुपम है, आश्चर्ययुक्त है ।

– और इसी को ब्रह्म कहते हैं, इसी को ज्ञान की गहराई कहते हैं, इसी को भू, स्वः, जन, मह, तप और सत्य लोक कहते हैं, जहां बिरले सौभाग्यशाली ही पहुंच पाते हैं ।

– और तुम्हें यहां तक पहुंचना है, हर हालत में, हर स्थिति में, इसी क्षण अभी छलांग लगा देनी है ... यही मेरा सन्देश है ।

—●—

ॐ परम तत्वाय हुं

● आपने मंत्र और तंत्र की व्याख्या तो की, पर यन्त्र पर आप नहीं बोले,.... क्या कुछ गोपनीय है इसमें ?

– गुरू के जीवन का कोई भाग गोपनीय नहीं होता, वह गोपनीयता के लिए अवतरित ही नहीं हुआ, उसके जीवन का तो एक-एक पन्ना खुली किताब की तरह है, जिसे कोई भी पढ़ सकता है, और समझ कर गुरू के अहोभाग का भागी हो सकता है।

– और फिर यंत्र तो शब्दकोष का सर्वश्रेष्ठ शब्द है, सुन्दर, उत्तम, अद्वितीय ...., यंत्र का तात्पर्य है उन्मुक्त होना, यंत्र का तात्पर्य है पूरी तरह से खुल जाना, पूर्णरूप से विकसित होना।

– जिस प्रकार से कमल पूर्णरूप से विकसित होकर अपना सौरभ चारों ओर बिखेर देता है, जिस प्रकार गुलाब का पुष्प चारों तरफ से उन्मुक्त हवाओं के साथ अपनी सुगन्ध को फैला देता है, ठीक उसी प्रकार मानव भी यंत्र के माध्यम से ही पूर्णरूप से विकसित होता है, यंत्र के द्वारा ही वह पूरी तरह से उन्मुक्त होता है, यंत्र के माध्यम से ही वह अपने पूर्ण स्वरूप को जानने के लिए सन्नद्ध होता है।

– और यंत्र किसी चांदी या तांबे पर उत्कीर्ण आड़ी-तिरछी लाइनें ही नहीं है, अपितु स्वयं की निजता है खुद का परिचय है, अपने अंगूठे का हस्ताक्षर है, यंत्र के माध्यम से ही साधक का विस्तार होता है, इसी के द्वारा वह लघु संसार से ऊपर उठ कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एकरस हो पाता है, यंत्र के माध्यम से ही वह ऊपर की ओर उठने की क्रिया करता है, सम्पूर्ण विश्व का एक भाग बनता है, सम्पूर्ण सृष्टि का नियामक और संचालक बनने की पात्रता हस्तगत करता है, और 'स्व' के विसर्जन की कला सीखता है।

– लघु को महान से, अणु को ब्रह्माण्ड से और देह को प्राणों से जोड़ने का माध्यम यंत्र ही है, यंत्र ही प्राणों में उतर जाने की क्रिया सीखाता है, यंत्र ही बताता है, कि गुरू के रक्त में, उसके कण में किस प्रकार से एकाकार हुआ जा सकता है, यंत्र ही तो सिद्धियों को साधक के चरणों में लाकर उपस्थित करता है, यंत्र द्वारा ही तो अणिमादि सिद्धियां साधक के गले में विजय माला पहिनाती हैं, और उसका विस्तार पूरे ब्रह्माण्ड में कर देती हैं।

– यंत्र तो ताम्र पर गुरू का सही रूप में साक्षात अंकन है।

मीरां की तब पीर मिटेगी, जब बैद सांवरियो होय

● **आप अपने प्रवचनों में कई बार मीरा का उल्लेख करते हैं, क्या इसका कोई विशेष कारण है ?**

– मीरा मात्र स्त्री नहीं, वह सम्पूर्ण रूप से कला है, वह तो केवल नारी नहीं, संगीत का पूर्ण रूप से सरगम है, वह केवल महिला ही नहीं, भावाभिव्यक्ति का सृजनात्मक स्वरूप है, वह अपने आप में जीवन्त है, चैतन्य है, भारतवर्ष की गुलाम नारी के स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति है।

– मीरा सही अर्थों में भक्ति है, विवाहित होते हुए भी वैरागिनी है, गृहस्थ होते हुए भी प्रेम की साकार प्रतिमा है, पति और परिवार के रहते हुए भी उन्मुक्त है, स्वतन्त्र है, चैतन्य है।

– अगर देखा जाय, तो संसार की समस्त नारियों के दर्द की वह सही अर्थों में अभिव्यक्ति है, अगर विरह के बारे में सीखा जा सकता है, तो वह केवल मीरा से ही सीखा जा सकता है, लोक लाज को छोड़ने की क्षमता मीरा से ही समझी जा सकती है, महलों के भोग-विलास को छोड़ कर गलियों में मगन होने की कला केवल मात्र मीरा से ही समझी जा सकती है, बवण्डरों, तूफानों, आलोचनाओं और विरोधों के बीच अडिग खड़ी रह कर प्रेम के गीत गाने की कला केवल और केवल मीरा से ही समझी जा सकती है।

– मीरा केवल स्त्री ही नहीं थी, वह एक लपट थी जिसमें समाज की हेकड़ी जल कर भस्म हो गई, वह एक शोला थी, जिसकी ओर ताकने की हिम्मत समाज में नहीं रही थी, वह एक अग्निपुंज थी, जिसने अपने कार्यों से बता दिया, कि प्रेम के सामने घर-बार, धन-दौलत, पति-पत्नी सब कुछ तुच्छ है, व्यर्थ है, बेमानी है, उसने पैरों में घुंघरू बांध कर ठुनकते हुए यह जता दिया, कि यदि नारी प्रेम के पथ पर पांव रख देती है, तो उसे हटाना किसी के बस की बात नहीं, यदि प्रेम दिवानो की आंखों में प्रियतम बसा है, तो उसे चलने, बढ़ने और प्रियतम से मिलने से कोई रोक नहीं सकता।

– इसीलिये तो मीरा सम्पूर्ण भारतवर्ष की नारी को दृढ़ता, प्रियतम से मिलने की अभिव्यक्ति और यथार्थता का प्रतीक है, और रहेगी।

जोत-हि जोत समानी

● **गुरुदेव ! मैं आप में पूर्ण रूप से परमात्मा के दर्शन करता हूं, और जब देखता हूं, तो निश्चल खड़ा सा रह जाता हूं ।**

– यह तुम्हारा भ्रम है, मैं परमात्मा नहीं हूं, परमात्मा का मतलब पहुंचा हुआ, किनारे लगा हुआ, रुका हुआ, नहीं मैं ऐसा नहीं हो सकता ।

– मैं तो आत्मा हूं, ठीक तुम्हारी तरह, तुम्हारी आत्मा ने अभी आनन्द के सरोवर में कदम रखा ही है, और मैं उसमें तैर चुका हूं, अवगाहन कर चुका हूं, पार कर चुका हूं, और मैं आत्मा ही रहना चाहता हूं ।

– क्योंकि जो परमात्मा होता है, वह किनारे पहुंच चुका होता है, रुका हुआ होता है, रुक जाता है, बासी पड़ जाता है, उसमें कोई हिलोर नहीं होती, कोई उछाह नहीं होता, कोई उमंग या उत्साह नहीं होता।

– पर मुझ में तो आनन्द का सागर लबालब लहरा रहा है, मुझ में तो एक सतत प्रवाह है, वेग है, जिसमें मैं अपने शिष्य-शिष्याओं को बहा कर ले चलता हूं, मैं तो तृप्ति का मानसरोवर हूं, जिसमें शिष्यों को तैरना सिखाता हूं, उत्साह और उछाल से उत्साहित करना सिखाता हूं, जिन्दगी के एक-एक क्षण को मस्ती के साथ जीने की कला सिखाता हूं ।

– मैं सिखाता हूं कि रुकना मृत्यु है, ठिठक जाना मौत है, हिचकिचाहट जीवन को नकारना है, जीवन तो बगावत के लिए है, चेलेंज के लिए है, फना होने के लिए है, मस्ती में झूमने के लिए है, प्यार के समंदर में आकंठ डूबने के लिए है ।

– और जो ऐसा नहीं कर सकता, वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता, जिसमें साहस नहीं है, वह मुझसे कुछ प्राप्त कर ही नहीं सकता, जिसकी आंखों में बगावत के भाव नहीं हैं, उसके प्राणों में मैं उतर ही नहीं सकता ।

– मैं तो आत्मा हूं, शिष्यों की धड़कनों को अपने धड़कनों में मिलाने के लिए, कदम से कदम मिलाकर नृत्य करने के लिए, प्राणों के रस को छक कर पीने के लिए ।

– और इसीलिए तो आत्मा को परमात्मा से भी श्रेष्ठ माना गया है ।

निन्दक नियरे राखिये

● **प्रभु ! कभी-कभी लोग जब आपकी झूठी आलोचना करते हैं, तो मन व्यथित हो उठता है, ऐसा लगता है, कि जैसे कानों में पिघला हुआ शीशा उड़ेल दिया हो ..... ।**

– मुझे आश्चर्य हुआ, कि मेरी आलोचना सुनकर तुम व्यथित हुए, परेशान हुए, पर इसमें आश्चर्य की बात क्या है, एक घटिया और ओछे व्यक्ति से तुम उम्मीद ही क्या कर सकते हो, नीचे खड़ा हुआ साधारण जीव, हिमालय की गरिमा को समझ भी कैसे सकता है, कुए के मेढ़क से तुम क्या उम्मीद कर सकते हो, कि वह समुद्र के ओर छोर का अनुभव करे, एक सांसारिक गन्दगी में उलझे हुए व्यक्ति से तुम पवित्रता की उम्मीद कैसे कर सकते हो ?

– ये पृथ्वी के निम्नतर जीव हैं, जिन्हें प्रभु ने मनुष्य तो बनाया है, पर चेतना नहीं दी, शरीर तो दिया है पर शुद्ध हृदय की धड़कन नहीं दी, हाथ-पैर और मुंह तो दिया है, पर बोलने का सलीका नहीं दिया, ये केवल पृथ्वी पर भार स्वरूप हैं, ये लोग ठीक वैसे ही हैं, जैसे सुन्दर सुसज्जित सुरम्य मंदिर में कुछ 'टायलेट' हों कुछ 'बाथरूम' हों, और समाज रूपी भवन में इन 'टायलेटों, बाथरूमों' की भी जरूरत पड़ती है, अतः इन्हें रहने दो, इनका भी प्रयोग होता है ।

– और फिर इनकी आलोचना से तुम विचलित क्यों हो रहे हो, इससे ज्यादा तुम उम्मीद भी क्या कर सकते हो, क्या कीचड़ को साबुन से धोने से वह उजला हो सकता है ? क्या कुत्ते को गुड़ खिलाने से उसका भौंकना बंद हो सकता है, उसकी आवाज में मिठास आ सकती है ? क्या गधे को गीता का उपदेश देने से उसमें चेतना आ सकती है ? नहीं, ये समाज के कीचड़ हैं, गंदी नाली के कीड़े हैं, और गंदगी बने रहने में ही ये सुख और तृप्ति अनुभव कर सकते हैं ।

– इसलिए तुम्हें व्यथित होने की जरूरत नहीं है, मुझे समझने के लिए इन्हें और कई जन्म लेने पड़ेंगे, इनकी निन्दा और आलोचना से मैं अशान्त नहीं होता, चांद पर थूकने से वह थूक, थूकने वाले के चेहरे पर ही गिरता है, इनके भौंकने से इनकी पहिचान समाज में आसानी से हो जाती है, यह दुर्गन्धयुक्त कीचड़ अपने आप अपना परिचय दे रहे हैं ।

– तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए, कि गंदगी के घिनौनेपन का पता आसानी से चल गया ।

अनहद में गुरू आप

● मैं रोज ध्यान में बैठती हूं, और आंखें बन्द कर आपको देखने की कोशिश करती हूं, पर आप दिखाई ही नहीं देते, आते ही नहीं .... ।

– गुरू का प्रसार तो अणु-अणु और कण-कण में है, वह तो सर्वत्र व्यापक है, इसलिए वह तो अनुपस्थित रह ही नहीं सकता, अगर कमी है, तो कहीं न कहीं हममें ही कमी है, कि हम उसे न तो जाग्रतावस्था में देख सकते हैं, और न ध्यान मग्न हो कर देख पाते हैं।

– ऐसा हो ही नहीं सकता, कि तुम गुरू को आवाज दो, और वह उपस्थित न हो, तुम उसे आंखों में बसाओ और वह दिखाई न दे, तुम उसे हृदय कमल पर आसीन करो और वह अनुपस्थित रहे, नहीं ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा हो ही नहीं सकता।

– चूक कहीं हमारी ही है, शायद हमारे ही मन की खिड़की छोटी सी है, जिसमें झांकने पर गुरू दिखाई नहीं दे, हमारी ही आंखों में वह निमन्त्रण पत्र नहीं है, कि उसे आगे बढ़ावें और वह आवे नहीं, हमारे ही हृदय पर लोक लाज के मोटे-मोटे पर्दे हैं, कि हम झांकें, और वह दिखाई न दे।

– गुरू अलग नहीं है, वह कहीं दूर नहीं खड़ा है, वह तो तुम्हारे हृदय में पहले से ही स्थापित है, आवश्यकता है, झुक कर, विनीत हो कर नम्र हो कर देखने की, वह तो मुस्कराता हुआ हृदय पटल पर ही खड़ा है, आवश्यकता है उसे प्रेम से, मधुर स्वर में पुकारने की, वह तो तुम्हारी ही धड़कन का एक भाग है, जरूरत है, उसे भली प्रकार से पहिचानने की, पास बिठाने की, हृदय सिंहासन पर बिराजमान करने की, मधुरता से अपने साथ आत्मसात करने की, निश्चिन्तता से अपने रग-रग रेशे-रेशे खून के कण-कण में मिला देने की।

– इतना ही तो करना है तुम्हें, बाहर से कहां बुलाना है उसे, वह तो पहले से ही तुम्हारे अन्दर है, जरा होठों पर गुरू की मुस्कराहट ला कर सलज्ज नेत्रों से निहारने की कोशिश तो करो, वह तो तुम्हारे अन्दर ही तो है।

जीवन जाल जंजाल

● **यह जीवन क्या है प्रभु ! इसे मैं समझ नहीं पाया हूं ?**

– यह जीवन प्रभु की तरफ से तुम्हें सौगात है, भेंट है, एक ऐसी भेंट, जो दूसरा कोई दे ही नहीं सकता, यह प्रभु की तुम पर असीम कृपा है, कि जीवन रूपी यह अनमोल खजाना तुम्हें दे दिया है ।

– पर तुमने इस सौगात को, प्रभु के इस वरदान को, कूड़े करकट के ढेर पर रख दिया है, प्रभु ने तुम्हें जो अमानत सौंपी है, वह कौड़ियों के बदले तुम लुटा रहे हो, क्योंकि तुम्हें इस जीवन का मूल्य या महत्व ही मालूम नहीं, तुमने इसको पहिचाना ही नहीं ।

– और बिना गुरू के तुम्हें कौन परिचित करायेगा तुम्हारे जीवन से, कौन बतायेगा कि प्रभु ने तुम्हारे जीवन की सृष्टि क्यों की है, प्रभु ने तुम्हारा निर्माण किस उद्देश्य के लिए किया है, क्या प्रयोजन है प्रभु का, क्या इच्छा है उस ब्रह्म की, जिसने तुम्हारी रचना की ।

– इसका ज्ञान गुरू के बिना प्राप्त हो ही नहीं सकता, वह पक्का जौहरी है, जो पहिचान लेता है, कि यह हीरा है या मोती, इसका मूल्य या महत्व क्या है, और वह जौहरी ही हीरे को खराद पर कस कर उसे धारदार, चमकीला और तेजस्वी बना सकता है, वह धूल में पड़े कंकर को हीरा बनाने की सामर्थ्य रखता है, उसी के पास यह कला है, और वही इस जीवन का मर्म समझा सकता है ।

– इस जीवन में अनन्त सम्भावनाएं छिपी हुई हैं, इस जीवन में असंख्य राज हैं, अनन्त आनन्द के स्रोत हैं, जिन्हें ढूंढ़ना है, पहिचानना है, और उस असीम आनन्द में भीग कर जीवन को धन्य कर देना है ।

– और यह काम गुरू की सहायता के बिना सम्भव नहीं, उसी की आंख में परख है, उसी के हाथ में कौशल है, वही तुम्हें, तुम्हारे आनन्द के स्रोत तक ले जाने में समर्थ है, वही तुम्हारे जीवन के मर्म को समझाने में सक्षम है ।

जीवन डोर अनन्त

● **आपने पिछले जीवन की बात कही, तो एक प्रश्न मेरे मन में उठना स्वाभाविक है, क्या मैं केवल पिछले जीवन में ही आपकी शिष्या थी, या इससे भी पिछले जीवनों में....किस जन्म से किस जीवन तक.... ?**

– प्रश्न अटपटा नहीं है, पर तुम शायद समझी नहीं, प्रश्न पिछले जीवन का नहीं है, जीवन कोई टुकड़ों में बंटा हुआ कालखण्ड नहीं है, वह तो एक अनन्त छोर है, जिसके आदि का, और अन्त की थाह पाना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है।

– और जो देह तत्व में जीवित रहते हैं, वे मां के गर्भ से श्मशान तक की यात्रा को ही जीवन मान लेते हैं, पर जिनके प्राण-चक्षु जाग्रत होते हैं, वे अपने पिछले जीवन को, और उस जीवन के प्रत्येक क्षण को भली भांति देख सकते हैं, पर जिनके आत्म-चक्षु जाग्रत होते हैं, वे पिछले कई-कई जन्मों को बखूबी देख सकते हैं उस जीवन की एक-एक घटना को, एक-एक दृश्य को... एक-एक बात चीत के क्षण को।

– और इसका प्रमाण यह है कि जिस पड़ौस में तुम बीस वर्षों से रह रही हो, उसके साथ अभी भी दुआ-सलाम ही चल रही है और जो गुरू हजारों मील दूर बैठा है, उसके बिना एक क्षण भी नहीं रहा जाता, जिस पति या पत्नी के साथ एक छत के नीचे इतने वर्षों से रह रहे हैं उसके प्रति इतना अपनत्व या लगाव अनुभव नहीं होता, जब कि बिना गुरू को देखे, व्यथा के बादल मंड़राने लगते हैं और आंखो से आंसुओं की जलधार प्रवहित होने लग जाती है, यह सब क्या है, यह इस बात का संकेत है, कि पड़ौसी, पुत्र-पुत्री, पति या पत्नी से केवल देहगत संबंध है, जो क्षणिक है, कच्चे धागे की तरह है, पर गुरू के साथ जो संबंध है, वे प्राणात्मक हैं, स्नेह की रज्जु से बंधे हुए हैं, प्राणों की डोर से कसे हुए हैं, इसीलिए उसके प्रति छटपटाहट है, वेदना है, विछोह का मर्मभेदी घाव है।

– और किस जीवन से मेरे साथ गुरू शिष्य का या आत्मीय संबंध रहा है, कई-कई जन्मों से....केवल पिछले जीवन से ही नहीं, इससे भी कई पहले के जीवन से...., हो सकता है ऋषियों की तपोभूमि में मुझसे दीक्षा ली हो, हो सकता है त्रेता में तुम्हारे साथ विचरण हुआ हो, हो सकता है द्वापर में कृष्ण को रासलीला में तुम भी एक गोपी की तरह उसमें सामिल हुई हो, और हो सकता है पिछले जन्म में सन्यासिनी बन कर उच्चकोटि की साधनाएं सम्पन्न की हो, और ऐसा ही हुआ है, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूं।

कहत कबीर सुनो भाई साधो

● **गुरुदेव ! कभी-कभी आपके प्रवचन समझ से परे हो जाते हैं, आपने एक बार "जाग्रत गुरू" शब्द का प्रयोग किया, यह गुरू की कौन सी श्रेणी है ?**

– तुम अबोध हो, इसलिए मेरे शब्द को एक अलग श्रेणी में रख दिया, गुरू के भेद नहीं हो सकते, गुरू की कोई जाति या धर्म नहीं होता, गुरू कोई शरीर भी नहीं है, गुरू तो "ज्ञान का पुंज" है, हाड़, मांस से ढके तन में जो स्पन्दनशील है, वह गुरू है, इस दुबली पतली काया में ज्ञान की जो गरिमा है वह गुरू है, गुरू कोई नाम नहीं होता, गुरू कोई पदवी भी नहीं होती।

– यह तो अपनी अज्ञानता और थोथेपन को ढकने का बहाना है, जो जितना ही ज्यादा अज्ञानी है, उसे उतने ही ज्यादा चमकीले कपड़े चाहिए, जिसके नीचे वह अपनी अज्ञानता को ढक सके, जो जितना ही ज्यादा ज्ञान से परे है, वह अपने ऊपर उतने ही ज्यादा विशेषण और पदवियों का बोझ लाद लेता है, जिसके नीचे उसकी मूर्खता उनकी अज्ञानता, उनकी न्यूनता छिप सके, कोई आचार्य, कोई महाचार्य, कोई विशेषाचार्य, कोई विश्वाचार्य, कोई ब्रह्माण्डाचार्य . कई-कई पदवियां हैं जिन्हें ये अपने सिर पर गठरी की तरह उठाये घूमते-फिरते हैं, और उसके बोझ के तले पसरते रहते हैं, फैलते रहते हैं, स्थूलकाय होते रहते हैं, और अहंकार में डूबते रहते हैं।

– और कुछ नहीं तो, एक टांग पर खड़े हो जायेंगे, कांटे बिछा कर उस पर लेट जायेंगे, पेड़ से बंदर की तरह उलटे लटक जायेंगे, अपने चारों ओर अग्नि लगाकर बीच में बैठ जायेंगे, गले तक पानी में खड़े होकर आंखें बन्द कर लेंगे, ये सब गुरू हैं, पर इनका वास्तविक स्वरूप पाखण्ड है, ढोंग है, छल है, झूठ है, कपट है, सत्य पर पर्दा डालने की कोशिश है।

– और इसीलिए मैंने 'जाग्रत गुरू' शब्द का प्रयोग किया, जो इन सबसे परे है, इन ढोंगी पाखण्डी चमकीले गुरुओं से बचने की जरूरत है, पर जो सही अर्थों में सरल व्यक्तित्व हों, जो सही अर्थों में ज्ञान की गंगा निरन्तर प्रवहित कर रहे हों, जिनके कंठ में सरस्वती हो, जो ब्रह्म से साक्षात्कार कर चुका हो, जिसके चेहरे के चारों ओर प्रभामण्डल हो, जो तेजस्वी पुंज हो, ऐसा ही गुरू "जाग्रत गुरू" कहलाता है, और जीवन में जहां कहीं पर भी ऐसा समर्थ गुरू मिल जाय, तुरन्त उनके पांव कस कर पकड़ लेना, समा जाना उसमें, यही तुम्हारे जीवन की पूर्णता होगी।

काहि विधि धीर धरूं

● **प्रभुवर ! आज जीवन में बहुत ज्यादा छल, धोखा, झूठ, असत्य, आपाधापी और स्वार्थ भर गया है, ऐसे में साधना कैसे संभव है ?**

– तुम तो मेरे शिष्य हो, फिर तुममें यह कायरता का खून कहां से आया, तुम तो मेरे प्राणांश हो फिर तुममें यह बुझदिली, यह कायरता, यह घटियापन, यह निम्नता कहां से आई ?

– यह तुम्हारे परिवार का संस्कार है, यह तुम्हारे आस-पास के परिवेश का प्रभाव है, यह तुम्हारे चारों तरफ फैले वातावरण का विषाक्त प्रभाव है।

– यह माना कि आदमी स्वार्थी, धोखेबाज, छली और कपटी हो गया है, यह माना कि उसमें स्वार्थ तत्व जरूरत से ज्यादा घुस गया है, यह माना कि उसमें दम्भ, अहंकार और अज्ञानता जरूरत से ज्यादा आ गई है, और वह खोखला हो गया है, बुझदिल, कायर और नपुंसक बन गया है।

– पर तुम तो मेरे हो, मैं तुमसे कहता हूं, कि तुम उस कीचड़ में कमल की तरह खिलो, मैं तुमसे कहता हूं, कि तुम उस दुर्गन्ध में वासन्ती पवन बन कर महको, मैं तुमसे कह रहा हूं, कि उस उजाड़, रूखे-सूखे रेगिस्तान में सरस वर्षा की फुहार बन कर बरसो, मैं तुम्हें समझा रहा हूं, कि तुम अपने प्राणों में चन्द्रमा की शीतल चांदनी भरो, और सब पर छा जाओ, अपनी आवाज में कोयल की कुहक भरो और वन-प्रान्तर को मधुरिमा से ओत-प्रोत कर दो, गुलाब की तरह झूमते हुए खिलो, और अपनी सुरभि से पूरे जंगल को महका दो।

– तुम ऐसा कर सकते हो, क्योंकि मैंने तुम्हारे अन्दर आनन्द का स्रोत उंडेला है, तुम्हारे कंठ में सुरीलापन दिया है, तुम्हारे प्राणों में देव संगीत का निनाद उच्चरित किया है, क्योंकि तुम मेरे शिष्य हो।

– उठो ! और पूरे विश्व को महका दो, यही मेरा सन्देश है, यही मेरी आज्ञा है।

पिय कूं मिलने मैं चली

● **आपने अपने एक प्रवचन में बगावत की बात की है, पर क्या इससे सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न नहीं हो जायेगी।**

– समाज, कौन सा समाज ? जो खोखला है, निरर्थक है, दंभी है, जिसने नारी को सैकड़ों वर्षों से बंदी बनाये रखा है, जिसने स्त्री को बच्चे पैदा करने की मशीन समझ रखा है, जिसने उसके पांवों में मोटी-मोटी बेड़ियां डाल रक्खी है, जो नित कोठों पर जाता है, मुजरे सुनता है, और घर आ कर पत्नी को पतिव्रता का पाठ पढ़ाता है।

– तुम किस समाज की बात कर रही हो, जो ऐय्यास, मक्कार और धूर्त हैं, जिसने अपने स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए धर्म ग्रन्थों की रचना की, जिसने आदमी को तो सभी दृष्टियों से स्वतंत्र रक्खा और स्त्री को— मात्र स्त्री को ही शील, संकोच, लज्जा और पतिव्रता का पाठ पढ़ाता रहा, जिसने स्त्री को 'भोग्या' से ज्यादा कुछ नहीं समझा, जिसने उसके मरने पर दूसरी स्त्री से विवाह करने को अन्यथा न समझा, पर पति के मर जाने पर उसे यह हक भी नहीं दिया, उम्र भर सफेद कपड़े पहिना कर सड़ने के लिए विवश कर दिया और जो **"ढ़ोल गंवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी"** कह कर धर्म ग्रंथ के ठेकेदार बन बैठे।

– इस सड़े-गले गलीज भीड़ को तुम समाज कहती हो, जहां स्त्री को जिन्दा जला कर उसे सती का मुखौटा पहिना दिया जाता था, जो एक-एक राजा सैकड़ों-सैकड़ों स्त्रियों को रनिवास में डाल कर मूंछों पर ताव देता था, जिसे घर की चहार दिवारी में कैद कर मर्दानगी को शान समझता था, जिसने स्त्री को, फालतू सामान से ज्यादा तवज्जह नहीं दी, तुम किसे समाज कहते हो, इन भेड़ियों को, जीवित मांस नोचने वाले इन गिद्धों को, पाखण्ड और धर्म की आड़ में देव-दासियां बना कर देह शोषण करने वाले धर्म-गुरुओं को.. .किनको ....किनको तुम समाज कहती हो, कौन सी सामाजिक व्यवस्था की बात कह रही हो।

– अगर तुम्हारी तरह सोचती, तो राधा चूल्हा-चक्की पीसने वाली एक घटिया स्त्री बन कर रह जाती, अगर तुम्हारी तरह सोचती तो रुक्मिया एक भोग्या एक बिछौना बन कर रह जाती, अगर तुम्हारी तरह सोचती, तो मीरा एक घटिया चहार दिवारी में कैद ठकुराइन बन कर रह जाती।

– पर नहीं, उन्होंने बगावत की, और नारी जाति को राह दिखाई, और तुम्हें भी इस सड़े-गले समाज के खिलाफ बगावत करनी ही पड़ेगी।

—●—

घट में बरसत ब्रह्माण्ड

● आपने पिछले जन्म की बात कही, और यह भी सही है, कि सिद्ध पुरुष की वाणी असत्य नहीं हो सकती, पर फिर हमें अपना पिछला जीवन दिखाई क्यों नहीं देता....क्या हम उस जीवन को और आपके साथ संन्यास रूप में विचरण करते हुए अपने पिछले जीवन के दृश्यों को नहीं देख सकते ?

– देख सकते हो, जरूर देख सकते हो, पिछला जीवन है ही इसलिए, कि तुम उसे देख सको, अपने आपको पहिचान सको, और मेरे तुम्हारे संबंधों को चीन्ह सको।

– पर तुम्हारा जीवन मां के गर्भ से निकल कर श्मशान तक की यात्रा का ही जीवन है, यह देहगत जीवन है, और देह दृष्टि पूर्व जीवन के दृश्य नहीं देख सकती, चर्म चक्षुओं की एक सीमा है, वह पांच सौ मीटर से ज्यादा दूरी की वस्तु स्पष्ट रूप से नहीं देख सकती, फिर यह तो लम्बी दूरी की घटना है, इस जीवन के कालखण्ड को लांघकर पिछले जीवन में प्रवेश करने की घटना है, इसके लिए चर्म-चक्षु पर्याप्त नहीं, आवश्यकता है दिव्य-चक्षुओं की, जो तुम्हारे इन चर्म-चक्षुओं के ठीक नीचे हैं, आवश्यकता है उन्हें जागृत करने की, चैतन्य करने की, उद्बुद्ध करने की, तो निश्चय ही तुम अपना पिछला जीवन देख सकते हो, पिछला ही नहीं, उससे भी पिछला जीवन बखूबी देख सकते हो, जिस प्रकार से टेलीविजन के पर्दे पर कोई फिल्म देख रहे हो।

– और आत्म-चक्षु या दिव्य-चक्षु जागृत करना कोई कठिन क्रिया नहीं है, अगर तुम्हारे पास दिव्य-चक्षु नहीं हैं तो गुरु के दिव्य-चक्षुओं से देख सकते हो, जरूरत है उनके प्राणों में उतरने की, जरूरत है नमन होने की, जरूरत है उनमें पूर्ण रूप से समा जाने की, जरूरत है एक रस हो जाने की, और जब ऐसा हो जायेगा, तो ये दो देह मिलकर एक हो जायेंगे, फिर तुम्हारी देह और गुरु की देह में कोई अन्तर नहीं रहेगा।

– फिर एक के कांटा चुभेगा, तो दूसरे को उसकी चुभन होगी ही, जब एक के हृदय में हूक उठेगी, तो दूसरे को कसक उठेगी ही, जब एक को जुदाई से छटपटाहट होगी तो दूसरे की आंखों में अश्रु प्रवाहित होंगे ही।

– और जब ऐसा होगा, तो फिर अन्तर कहां रह जायेगा, फिर तो स्वतः तुम्हारे दिव्य-नेत्र जाग्रत हो जायेंगे और तुम अपने सारे पिछले जीवन और मुझसे उन जन्मों के संबंध बखूबी देख सकोगी।

– तुम देख सको, यही तो आशीर्वाद दे रहा हूं।

जनम जनम को नेह

- **आपने कहा कि शिष्य का बार-बार जन्म होता रहता है, जब तक कि वह मोक्ष प्राप्त न कर ले, और बार-बार उसी गुरू से उसका सम्पर्क साहचर्य बनता है, क्या यह सही है, क्या मैं पिछले जन्म में भी आपकी शिष्या थी?**

– इसमें तुम्हें भ्रम क्यों है, इसमें शक-ओ-सुबह की गुंजाइश ही कहां है, निश्चय ही तुम पिछले जन्म में मेरी शिष्या थी, शरीर का चोला बदल जाने से क्या हो जाता है, प्राण तो वही है न, आत्मा का स्वरूप तो बदला नहीं है न।

– और केवल तुम ही नहीं, ये सामने जितने शिष्य-शिष्याएं बैठी हैं, इन सब का मेरे साथ संबंध रहा है, गुरू शिष्य का संबंध, आत्मीय संबंध प्राणों का वेगमय संबंध यह संबंध कालखंड तोड़ नहीं सकता, इन संबंधों को कोई अलग नहीं कर सकता।

– तुम भूल गई हो, क्योंकि तुम अभी तक देहगत अवस्था तक ही पहुंची थी, इसलिए जब देह मिटी, तो संबंध भी विस्मरण हो गये, पर शिष्य जब प्राणगत संबंधों में पहुंच जाता है, तो उसे पिछला जीवन भली-भांति याद रहता है, उसे पिछले सारे संबध ज्ञात रहते हैं, क्योंकि वह प्राणगत अवस्था में पहुंचा हुआ होता है, और इसीलिए मैंने तुम लोगों को देखते ही पहिचान लिया था, कि तुम मेरे वही प्रिय और आत्मीय शिष्य हो, जो पिछले जन्म में भी मेरे साथ थे, मेरे साथ ही हंसते नाचते गाते खिलखिलाते थे, मैं तुम में से प्रत्येक को भली-भांति पहिचानता हूं।

– और फिर गुरू और शिष्य का संबंध तो जन्म-जन्मांतर का संबंध होता है, उसे कोई अलग नहीं कर सकता, उसे कोई जुदा नहीं कर सकता, क्या कोई फूल से उसको सुगन्ध को अलग कर सकता है, क्या कोई मेघ को बिजली से अलग कर सकता है, क्या वर्षा की बूंदों को पृथ्वी से मिलने से कोई रोक सकता है, क्या कोई कोयल के कंठ से उसकी कुहुक को अलग कर सकता है, क्या पहाड़ों से निकली हुई नदी को समुद्र की बांहों में समा जाने से कोई रोक सकता है।

– नहीं, यह संभव नहीं, तो फिर तुमको भी मुझसे मिलने से कोई रोक नहीं सकता, मेरे हृदय की गंगा में पवित्र होने से कोई रोक नहीं सकता, मेरे प्राणों से जुड़ जाने की क्रिया से कोई अलग नहीं कर सकता, यह संभव ही नहीं है, यह नामुमकिन है।

– और इस जन्म में ही गुरू के प्राणों से एकाकार हो जाना है, जिससे बार-बार जन्म न लेना पड़े, यही क्षण है, मिल जाने का, जुड़ जाने का, विसर्जित हो जाने का।

बैरण निंदिया बहुत सतावै

● गुरूजी ! कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है, कि मैं पागल हो जाऊंगी, कभी-कभी तो रात को नींद उचट जाती है, और फिर नींद ही नहीं आती, आपकी फोटो सामने रख देती हूं, कभी आप गुस्से में दिखाई देते हैं, तो मैं डर जाती हूं, पर दूसरे ही क्षण आप मुस्कराने लगते हैं, तो सांस में सांस आती है, पर फिर आप अदृश्य हो जाते हैं, छिप जाते हैं, और मेरी आंखों से आंसू बहने लग जाते हैं, और मैं सिसक उठती हूं, ऐसा क्यों हो रहा है ?

– जो सामान्य प्राणी हैं, जो साधना तत्व को नहीं जानते, जिन्होंने साधना तत्व को नहीं पहिचाना, वे तुम्हें पागल कह सकते हैं, क्योंकि बुद्धिहीनों को अपने अलावा सभी पागल नजर आते हैं ।

– पर जिस प्रकार की स्थिति का तुमने वर्णन किया है, अपनी दशा का जिस प्रकार से तुमने जिक्र किया है, वह पागलपन की निशानी नहीं है, अपितु साधारण धरातल से ऊपर उठने की क्रिया है, आत्मा का परमात्मा से मिलने की स्वाभाविकता है, बूंद का समुद्र में विसर्जन होने की प्रक्रिया है, और यह तुम्हारा अहोभाग है, कि तुम इस स्थिति तक पहुंच सकी, यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुमने इस अवस्था को प्राप्त किया ।

– जब क्षुद्रता ऊपर की ओर उठती है, जब आत्मा परमात्मा की ओर अग्रसर होती है, तब ऐसी स्थिति होनी स्वाभाविक है, माध्यम तो कोई भी हो सकता है, शिवलिंग हो सकता है, कृष्ण की मूर्ति हो सकती है, गुरू का चित्र हो सकता है, और तुम्हारे साथ भी ऐसा ही हो रहा है ।

– वह गुरू चित्र रोता, क्रोधित होता या हंसता नहीं है, वह तो तुम्हारे प्राणों में स्थित है, और वह अन्दर का बिम्ब ही चित्र पर उजागर होता है, और तुम्हें ऐसा आभास होता है ।

– तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम इस स्थिति तक पहुंची, और अन्य शिष्य-शिष्याओं को भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो, यह मेरा आशीर्वाद है ।

सबै सयाने एक मत

- **भारतवर्ष के प्रसिद्ध परमहंस योगी निर्मलदेव जी ने एक साक्षात्कार में बताया था, कि स्वामी निखिलेश्वरानंद पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण की आत्मा में हैं, और इसके ठीक २५०० वर्ष बाद बुद्ध की आत्मा के रूप में अवतरित हुए, और इसके ठीक २५०० वर्षों बाद निखिलेश्वरानंद के रूप में विश्व-वन्द्य हैं, परमहंस निर्मलदेव जैसे योगी की वाणी मिथ्या हो ही नहीं सकती, आप निखिलेश्वरानंद के रूप में स शरीर हमारे बीच में विद्यमान हैं, यह हमारा सौभाग्य है, क्या आप इस पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे ?**

– कबीर ने एक स्थान पर कहा है, कि "साच कहूं तो मारन धावें, झूठे जग पतियाना" ।

– और अगर भारत के श्रेष्ठतम अद्वितीय सिद्धाश्रम के योगी परमहंस निर्मलदेव जी ने बात कही है, तो वह मिथ्या नहीं हो सकती, उसमें झूठ का कोई आधार नहीं हो सकता, उस वक्तव्य के प्रति शक-ओ-सुवह करने की गुंजाइस नहीं है ।

– पर यदि पृथ्वी पर कोई महान आत्मा अवतरित हुई भी हो तो जीते जी उसकी कद्र नहीं होती, जीते जी उसे नहीं पहिचाना जाता, जीते जी उसके बारे में जिज्ञासा नहीं होती, उसके बारे में लाभ नहीं उठाया जाता, उसकी वास्तविकता को नहीं पहिचाना जाता ।

– सदियों से हमारे भारतवर्ष ने यही किया, और यही करते आ रहे हैं, राम को हमने कुचक्र रच कर अयोध्या से बाहिर निकाल कर जंगल की खाक छानने के लिये मजबूर कर दिया, श्रीकृष्ण के ऊपर गोपियों को लेकर हजार-हजार लांछन लगाये गये, उसे चोर कहा गया, मथुरा से भागने पर विवश कर दिया और रणछोड़ बना कर छोड़ा, बुद्ध को लाठियों से पीट-पीट कर बेहोश कर दिया, महावीर के कानों में कीले ठोंक दी, शंकराचार्य को कांच घोट कर पिला दिया, मीरा को जहर का प्याला पीने के लिये मजबूर कर दिया और मां आनन्दमयी को जितना अपमान जितना लांछन सहना पड़ा, उसकी कोई मिसाल नहीं है ।

– हमारे समाज ने जीवित जाग्रत व्यक्तित्व के लिये ऐसा ही किया और वर्तमान में भी ऐसा ही कर रहे हैं, वे नहीं समझ सकेंगे मुझे, उनके होठों पर गालियां हैं, उनके होठों पर आलोचनाएं हैं, उनके हाथों में पत्थर हैं, उनके दिलों में सन्देह के सांप विचरण कर रहे हैं ।

– यहां मरने के बाद "स्टेच्यू" बनाये जाते हैं, उनके मंदिरों का निर्माण होता है, पर तुम तो चेतो, तुम तो जीवित जाग्रत व्यक्तित्व को पहिचानों, अब भी समय है, अब भी बहुत कुछ हो सकता है ।

साधो ! सिद्धन का पथ न्यारा

● **पूज्य गुरुदेव ! साधक और सिद्ध में क्या अन्तर है ?**

– साधक का तात्पर्य है, जो अभी-अभी साधना के क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ है, जो अभी-अभी कुछ समझने लगा है, जिसने अभी-अभी इस क्षेत्र में दो-चार डगमगाते हुए कदम भरे हैं, जिसने तुतलाना और ऊटपटांग शब्दों का उच्चारण सीखा है, जो विस्फारित नेत्रों से यह सब देखने सुनने का प्रयास कर रहा है, उसके लिए साधना का यह क्षेत्र नया सा है, अनजाना है, अपरिचित है, माया लोक सा है।

– अभी उसमें परिपक्वता नहीं आई, अभी उसका साधना पर पूरा विश्वास नहीं जमा, अभी वह संशय-असंशय के झूले में झूल रहा है, अभी उसका मन भ्रमित है, अभी उसका चित्त डांवाडोल है, अभी वह किनारे नहीं लगा, वह इस साधना के समुद्र में उतर तो गया है, पर किनारा हाथ नहीं लगा, अभी उसने मोतियों का मर्म नहीं जाना, अभी उसने इस साधना समुद्र का ओर छोर नहीं पहिचाना।

– इसलिये वह भ्रमित है, डांवाडोल है, कभी कहता है साधना सही है, उससे सिद्धि प्राप्त हो सकती है, कभी उसे इन सब पर सन्देह होने लगता है, मन भटक जाता है, सोचता है, छोड़ो भी यह सब खटराग, वापिस उसी गृहस्थ में लौट चलो, कम से कम वहां पत्नी की सुरक्षा तो थी, समाज का झूठा ही सही विश्वास तो था, यहां पर तो पता नहीं क्या होगा, क्या नहीं, क्या कुछ मिलेगा भी या नहीं, गुरू होते भी हैं या यह सब पाखण्ड है, गुरू पर विश्वास करना भी चाहिए या नहीं, और वह इन सब में उलझता डूबता चला जाता है, लक्ष्यहीन, दिशाहीन, अन्तहीन उसे साधक कहते हैं।

– पर जब उसे गुरू मिल जाता है, उसका कस कर हाथ पकड़ लेता है, उसके साथ निर्द्वन्द्व निश्चिन्त भाव से गतिशील हो जाता है, तो उसके सामने का अन्धेरा छंटने लगता है, उसे उगते हुए सूय का सुन्दर आह्लादकारक प्रकाश दिखाई देने लगता है, और वह निर्द्वन्द्व भाव से गतिशील हो उठता है, उसके मन की सारी शंकाएं, सारे भ्रम खत्म हो जाते हैं, उसी को "सिद्ध" कहते हैं।

बिन साधन सिद्धि कहां

● **गुरूजी, पत्रिका में कई साधनाएं प्रकाशित होती है, और उन साधनाओं के लिए साधना सामग्री, माला, उपकरण आवश्यक हैं, क्या साधनाओं में सिद्धि प्राप्त करने के लिए इनकी जरूरत है ? क्या इनके बिना काम नहीं चल सकता, साधनाओं में सिद्धि प्राप्त करने के लिये ये कहां तक आवश्यक एवं उपयुक्त है ?**

– क्या सांस लेना आवश्यक है, क्या जिन्दा रहना आवश्यक है, क्या शरीर को गतिशील बनाये रखना आवश्यक है, अगर ये सब आवश्यक हैं, तो साधनाओं में सिद्धि के लिये साधना सामग्री या उपकरण भी आवश्यक हैं।

– साधना में सिद्धि और सफलता के लिये दो तत्वों की नितान्त अनिवार्यता है, गुरू के प्राणों में एक रस होने की क्रिया, और इष्ट से पूर्ण साक्षात्कार, उनके भव्य दर्शन, उनमें पूर्ण समा जाने की प्रक्रिया।

– पर यह सब कैसे ? इनके लिये माध्यम है, साधनात्मक उपकरणों की, माला, यंत्र, चित्र एवं साधना सामग्री की, जो मंत्र सिद्ध हो, प्राणश्चेतना युक्त हो, फलदायक हो, सिद्ध हो, इष्ट और साधक के बीच सेतु हो, गुरू और शिष्य के बीच आत्मिक संबंध हो, और ये उपकरण इसी क्रिया को सम्पन्न करते हैं।

– हमारी आंख कुछ भी नहीं देखती क्योंकि उसमें देखने की शक्ति है ही नहीं, जो कुछ दिखाई देता है, वह तो प्रतिबिम्ब है, आपकी आंख सामने वाले बिम्ब पर टिकती है, और आंख से जो किरण फूटती है, वह प्रतिबिम्ब से टकरा कर पुनः आंखों में लौट आती है, इसलिये वह वस्तु या पदार्थ दृष्टिगोचर होता है।

– इसी प्रकार हमारी आंख गुरू के प्राण तत्व या इष्ट को भी नहीं देख पाती, वह इन साधना उपकरणों से टकराती है, और ये उपकरण गुरू के प्राण तत्व और इष्ट के प्रतिबिम्ब होते हैं, अतः दृष्टि इन उपकरणों से टकरा कर सीधी गुरू के प्राणों से, और इष्ट से टकरा कर पुनः तुम्हारी आंख में लौट आती है, और इसी वजह से इष्ट के जाज्वल्यमान दर्शन सुलभ होते हैं, इसीलिए गुरू के प्राण तत्व में समाविष्ट होने की क्रिया सम्पन्न होती है, और इसीलिये ये उपकरण गुरू और इष्ट से भी ज्यादा महत्वपूर्ण आवश्यक एवं अनिवार्य हैं।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम

● **क्या गुरुदेव अपने लक्ष्य तक या सिद्धि तक पहुंचने में पति-पत्नी या पुत्र स्वजन बाधक है, अवरोधक हैं, अगर हैं, तो फिर क्या करना चाहिए, क्यों कि इस जीवन को तो अकारण गंवाना नहीं है, फिर सामाजिकता को भी ध्यान में रखना पड़ता है, बड़ी उलझन है, क्या करना चाहिए ?**

- मीरा के सामने भी यही समस्या आई थी, जो तुम्हारे सामने है, मीरा के परिवार वाले उसके प्रवल शत्रु बन गये थे, क्योंकि वह जीवन के उस रास्ते पर कदम रख चुकी थी, जो सत्य का रास्ता था, उन्नति का रास्ता था, गिरधर में विसर्जन का रास्ता था, ब्रह्म से साक्षात्कार करने का रास्ता था ।
- पर ससुर और पति ने उस पर अत्याचारों की बाढ़ लगा दी, उसे जहर का प्याला पीने के लिए मजबूर किया, जिससे कि उसकी मृत्यु हो जाय, पिटारे में सांप भर कर उसके पास भेजे, जिससे कि उनके डंसने से मीरा की जीवन लीला समाप्त हो जाय, बदनाम किया, प्रताड़ित किया, मानसिक रूप से कष्ट और दुःख देने में कोई कसर न छोड़ी ।
- और तब मीरा ने संत तुलसी को पत्र लिखा, कि पूरा परिवार मेरे खिलाफ खड़ा हो गया है, और हथियार भांज रहे हैं, बदनाम कर रहे हैं, जो-जो अत्याचार नहीं होने चाहिए, वे सब जुल्म मुझ पर हो रहे हैं, मुझे क्या करना चाहिए ।
- और तुलसीदास ने मीरा के पत्र के जबाब में पत्र से ही उत्तर लिखा — जाके प्रिय न राम वैदेही,

  तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही ।
- और मैं भी तुम्हें यही सलाह दे रहा हूं, कि पलट कर आक्रमण मत करो, गाली का जवाब गाली से मत दो, अत्याचारों का मुकाबला हिम्मत से करो, साहस से करो, दृढ़ निश्चय से करो, क्योंकि तुम सत्य के पथ पर हो, सही रास्ते पर हो, वे चाहे कितने ही प्रिय हों कितने ही स्वजन हों, कितने ही नजदीकी रिश्तेदार हों, उनसे किनारा कर एक तरफ खड़े हो जाओ, मौन और दृढ़ता बहुत बड़ा उत्तर है, इन परिवार वालों की हठ धर्मिता का, हिम्मत बहुत बड़ा जवाब है, इनके अत्याचारों को, चुनौतियों को झेलते हुए अपने सत्य पथ पर गतिशील होना बहुत बड़ा उत्तर है, इन कपटी, स्वार्थी परिवार वालों के लिए।
- और मैं हमेशा सत्य और न्याय के लिए तुम्हारे साथ हूं ।

श्वान न साधक होय

गुरुदेव! जब हम पत्रिका के बारे में किसी से बात करते हैं, तो वे आपकी बहुत आलोचना करते हैं, ऊलझलूल बकते हैं, कहते हैं, कि पत्रिका का नाम "मंत्र-तंत्र-यंत्र" डरावना है, इसे बदल दो तो हम सदस्य बनें, कहते हैं, कि आपके पास कोई सिद्धियां नहीं हैं, उनका कहना है, कि आप शुरू में अध्यापक थे, अब बड़े हो गये हैं, आप पर और भी कई कई ऊलझलूल बातें कहते हैं, जो सुने नहीं जाते.... इच्छा होती है, कि थप्पड़ मार दें, मुंह नोच लें- पर फिर....

– तुम इतनी सी बात से घबरा गये, वे कह रहे हैं, क्योंकि उनके पास गंदा सा मुंह है, गालियों की भाषा से सिक्त जबान है, झूठी आलोचनाओं से उन्हें सन्तोष मिलता है, सोने को, मिट्टी का ढेला कहने में उन्हें सुख मिलता है।

– उन्हें "मंत्र-तंत्र-यंत्र" नाम डरावना लग रहा है, बड़े कायर और बुझदिल हैं, जिन्हें अपने पूर्वजों से डर लगता है, पूर्वजों की विद्या और ज्ञान से डर लगता है, पूर्वजों की थाती और विरासत से डर लगता है ऐसे नपुंसकों से बात करके तुम अपना समय बरबाद करते ही क्यों हो, ऐसे क्लीव पुरुष इसके अलावा कर भी क्या सकते हैं, कल तो वे कहेंगे, कि भगवान श्रीराम का नाम डरावना है, उनका नाम प्यारेलाल रखो तो उनके मन्दिर में जांय, श्रीकृष्ण का नाम खतरनाक है, उनका नाम मिर्चूमल रखो तो उनका नाम स्मरण करें।

– और वे घटिया आदमी इसके अलावा मेरी आलोचना कर भी क्या सकते हैं, उन्होंने यह आलोचना नहीं की, कि मैं नंगा पैदा हुआ था, यह आलोचना नहीं की, कि एक वर्ष तक छोटी सी चड्डी में गलियों में घूमता था, यह आलोचना नहीं की, कि मैं धूल में अन्य बालकों के साथ खेलता था, चिन्ता मत करो, उनके पास और कोई आलोचना के पत्थर नहीं होंगे, तो इन शब्दों के ढेले ही फेंकेंगे, और मैं अध्यापक था शिक्षक था, तो यह शर्म की बात नहीं, मेरे लिए गौरव और प्रतिष्ठा की बात है।

– तुम गलत कर रहे हो, भेड़ियों के मुंह से राम-राम शब्द का उच्चारण करवाने की कोशिश कर रहे हो, कुत्तों को शक्कर खिला कर मीठी बोली बोलने का प्रयोग कर रहे हो, भैंस को राग जै जैवन्ती सुना कर उसे शास्त्रीय संगीत में पारंगत करने की कोशिश कर रहे हो, गधों पर साबुन लगा कर घोड़े बनाने की कोशिश कर रहे हो।

– मैं खुश हूं, कि वे मेरी आलोचना कर रहे हैं, क्योंकि मैं उनकी न्यूनताओं पर शब्दों से प्रहार कर रहा हूं, उनकी खामियों पर आघात कर रहा हूं, मेरे शब्दों की धार तेज हुई है, जिसके प्रहार से वे बिलबिला रहे हैं, और ऊलझलूल बक रहे हैं यह तुम्हारी और मेरी विजय है, हमें प्रसन्न होना चाहिए, इस बात पर जश्न मनाना चाहिए।

सिद्धाश्रम : स्वर्ग तुल्यो नराणां

- **आपने अपने प्रवचनों में और पत्रिका में कई बार सिद्धाश्रम का वर्णन किया है, और बताया है, कि वहां दो-दो हजार तीन-तीन हजार वर्षों की आयु प्राप्त सिद्ध योगी रहते हैं, क्या यह सच है ?**

– क्या यह सच है, कि तुम जीवित हो, कोई प्रमाण है, तुम्हारे पास, क्या यह सच है कि किशनलाल ही तुम्हारे पिता हैं, जन्म लेते वक्त किसी प्रकार का कोई सर्टिफिकेट लेकर आये थे, कि तुम किशनलाल के ही पुत्र हो, क्या तुम्हारे पास कोई प्रमाण है, कि तुम कल तक जिन्दा रहोगे।

– तुम किशनलाल के पुत्र हो, और अपने नाम के आगे पिता का नाम लिखते समय श्री किशनलाल लिखते हो, इसलिए कि तुम्हारी मां ने कहा कि तुम्हारे पिता किशनलाल हैं, और तुमने मान लिया, और आज तक मानते आ रहे हो, यद्यपि इसके बारे में तुम्हारे पास कोई ठोस प्रमाण, सनद या सर्टिफिकेट नहीं है, मां ने कहा और तुमने माना।

– और इसी प्रकार मैं तुम्हारा गुरू हूं, और मैं कह रहा हूं कि सिद्धाश्रम है, और तुम्हें मानना चाहिए, और मैं कह रहा हूं, कि वहां चार-चार पांच-पांच हजार वर्षों की आयु प्राप्त योगी हैं, और जीवित हैं, तो भी तुम्हें मानना चाहिए, मानना चाहिए ही, क्योंकि मैं तुम्हारा गुरू कह रहा हूं, तुम्हारा पथ प्रदर्शक कह रहा हूं, तुम्हारे जीवन का आधार कह रहा हूं।

– जहां संशय होता है, जिसके मन में झूठ, छल-कपट का व्यापार चलता है, उसके मन में 'क्या' और 'कैसे' बेहूदा प्रश्न उठते हैं, जो नीचे के धरातल पर खड़ा होता है, उसे ऊंचाई का आकाश दिखाई नहीं देता, टिटहरी दोनों टांगे ऊपर उठाये यही सोचती है, कि आकाश मेरे ही पैरों पर टिका हुआ है, और यही सच है, बाकी सब झूठ है।

– और वैसी ही स्थिति तुम्हारी है, जरा शिष्य बनो, साधक बनो, साधुत्व के पथ पर गतिशील बनो, सिद्ध बनने की प्रक्रिया करो, तुम स्वयं अपनी आंखों से सिद्धाश्रम देख सकोगे, स शरीर उसमें गतिशील हो सकोगे, और उन हजारों वर्षों की आयु प्राप्त योगियों के पास बठ कर मन के सन्देह के विषैले सर्प का फन कुचल सकोगे।

– चलना तो तुम्हें है, मैं तो तुम्हारे साथ हूं।

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है

- **मैं गुरुदेव तीन चार वर्ष से साधनाएं करता आ रहा हूं, पर एक बार भी सिद्धि नहीं मिली, किसी के भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुए, ऐसा क्यों ? क्या मुझमें कुछ कमी है प्रभु ?**

– ऐसा लगता है कि तुम्हारा प्रश्न ही गलत है, आधार ही गलत है, चिन्तन विचार और धारणा ही गलत है, और जो है, उसका परिणाम भी गलत ही तो होगा ।

– तुमने आंख मूदने को और हाथ में माला लेने को साधना समझ लिया, तुमने आठ-दस मालाएं मन्त्र जप कर लिया, और अपने आप को सिद्ध समझ बैठे, तुमने लक्ष्मी के चित्र को सामने रखा, आरती उतारी और जब लक्ष्मी प्रगट हुई नहीं, नोटों की वर्षा नहीं हुई, तो साधना को गलत समझ बैठे, साधना गलत नहीं है, तुम गलती पर हो, तुम्हारी क्रिया गलत है, तुम्हारी कार्य पद्धति गलत है ।

– साधना का आधार गुरू है, उपनिषदों का सारभूत तथ्य ही यह है, कि साधना में सिद्धि गुरू के समीप जाने में है, साधना में सिद्धि गुरू के निकट पहुंचने में है, उपनिषद का अर्थ ही यह है कि गुरू के निकट, और निकट, बहुत अधिक निकट पहुंच जाओ, इतने निकट कि तिनके भर की भी दूरी न रहे, इतने निकट कि गुरू और शिष्य में कोई व्यवधान, कोई भेद, कोई विचार भिन्नता न रहे, दो शरीरों में एक प्राण हो जाय, और इस "एक प्राणता" को साधना ग्रन्थों में "साधना" कहा है, इस एक दूसरे में समा जाने की क्रिया को शास्त्रों ने "उपनिषद" कहा है, इस भेद की समाप्ति को योगियों ने "सिद्धि" कहा है ।

– इसलिए पहले तुम्हें सही अर्थों में साधक बनना है, पूर्णता के साथ गुरू के साथ एकाकार होना है, उनमें लीन हो जाना है, पूर्णरूप से विसर्जित हो जाना है, एक दूसरे में समा जाना है, दुनियां की नजरों में दो शरीर रहे, पर इन दोनों शरीरों में प्राण एक ही धड़कना चाहिए, और जब ऐसा हो जायेगा, तो तुम सही अर्थों में साधक कहला सकोगे, सही अर्थों में शिष्य कहला सकोगे ।

– और जब ऐसा होगा, तो अपने आप तुम्हारे प्राणों में गुरू की चेतना का दीप प्रज्वलित हो जायगा, अपने आप सिद्धियों की जगमगाहट उजागर हो जायगी, अपने आप सिद्धियां हाथ बांधे तुम्हारे सामने खड़ी होंगी, अपने आप तुम सिद्धता और सफलता प्राप्त कर सकोगे, यह गारन्टी है, यह निश्चित है, यह अवश्यम्भावी है ।

● **प्रभु ! इस संसार से और विशेष कर अपने आप से बहुत भय लगता है, कि क्या मैं अपने लक्ष्य तक पहुंच भी सकूंगा, या पिछले जन्मों की तरह इस जन्म में भी भटकता ही रहूंगा, क्या ब्रह्म तक पहुंचने की क्रिया सम्पन्न हो भी सकेगी ?**

- तुम्हारा भय अकारण नहीं है, क्योंकि जो चिन्तन करता है, वह सोचता भी है, और जो सोचता है, उसे भय-अभय दोनों की स्थिति बनी रहती है।
- पर तुम्हें भय करने की जरूरत नहीं है, इसके दो कारण हैं, एक तो तुम समय रहते ही चेत गये हो, सावधान हो गये हो, अपना रास्ता चुन लिया है, अपने लक्ष्य का पता लगा लिया है, और उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए पथ पर अपने पांव बढ़ा दिये हैं, और दूसरा, मैं तुम्हारे साथ हूं, जीवित जाग्रत व्यक्तित्व, चैतन्य और स्पष्ट व्यक्तित्व, इसलिए इन दोनों स्थितियों के मेल होने से लक्ष्य ज्यादा आसान हो गया है, मंजिल ज्यादा नजदीक आ गई है, लक्ष्य ज्यादा स्पष्ट हो गया है।
- और फिर जब मैं साथ में हूं, तो फिर भय रखने की जरूरत ही नहीं हैं, मैं जहां हूं वहां भय नहीं हो सकता, मैं जहां पर हूं वहां चिन्ताएं व्याप्त नहीं हो सकतीं, जहां भी तुम्हें भय लगे, जहां भी मन डांवाडोल हो, वहां मुझे स्मरण कर लेना, भय अपने आप ही समाप्त हो जायेगा, चिन्ताएं अपने आप ही काफूर हो जायेगी, मन की उमड़न-घुमड़न अपने आप ही शान्त हो जायेगी, और तुम निर्द्वन्द्व निश्चिन्त हो कर आगे बढ़ सकोगे।
- तुम्हें यह जीवन अकारण और अकारथ नहीं गंवाना है तुम्हें इस जीवन के प्रत्येक पल, प्रत्येक क्षण का हिसाब रखना है, और प्रतिपल मानसिक, शारीरिक रूप से मेरे साथ रहना है, तब तुम अनुभव करोगे कि समस्याएं अपने आप समाप्त होने लगी हैं, दुःख के बादल अपने आप छंटने लगे हैं, समस्याओं का जंजाल अपने आप कटने लगा है, और तुम्हारा लक्ष्य उजली धूप की तरह अपने आप स्पष्ट होने लगा है।
- घबराते क्यों हो, मुझे स्मरण कर लेना, मैं तुम्हारे साथ हूं।

—●—

इस तन का दियरा करौं

● **गुरुदेव, आप बहुत परिश्रम करते हैं, और उसका प्रभाव आपके शरीर पर अनुभव होने लगा है, क्या हम इसके लिए कुछ कर नहीं सकते ?**

– विधाता ने जब मेरी भाग्य लिपि लिखी, तो उसमें परिश्रम की पंक्तियां सबसे अधिक थी, और इसीलिए मेरा जीवन श्रम में ही, परिश्रम में ही व्यतीत हुआ, विश्राम जैसा शब्द मेरे जीवन में है ही नहीं।

– और यह परिश्रम मेरे लिये नहीं, स्वार्थ के लिये कोई यत्न प्रयत्न या स्वार्थ नहीं, जो कुछ किया शिष्यों के लिये किया, शरीर के रक्त का एक-एक कण शिष्यों को ही समर्पित किया, अगर मैं तिल-तिल करके जला भी हूं, तो शिष्यों के लिये, अगर मेरे शरीर का कतरा-कतरा क्षरित हुआ है, तो वह शिष्यों के लिये, जीवन की प्रत्येक सांस, प्रत्येक धड़कन शिष्यों के लिये ही समर्पित रही।

– इसलिये कि ये कुछ बन जांय, इसलिये कि इन मुरदा शरीरों में प्राण फूंक सकूं, इसलिये कि इन बुझते दियों को वापिस जला सकूं, चेतना दे सकूं, अपना रक्त दे कर इन्हें सींच सकूं, जिससे कि ये दिये जलें, जिससे कि ये दिये ज्योत्स्नित हों, जिससे कि इन दियों से प्रकाश फूटे, जिससे कि इन दियों से अंधियारा छंटे, और ये छोटे-छोटे दिये सूर्य का स्थान ले सकें, प्रकाशवान हो सकें, मेरी दी हुई ज्ञान की गरिमा से देश का नेतृत्व कर सकें, घोर भौतिकता में ये आध्यात्मिकता की लहर पैदा कर सकें, उमंग पैदा कर सकें, हिलोर पैदा कर सकें।

– और इतना सब कुछ करने के लिये बहुत कुछ खोना भी पड़ता है, और खोया है, रक्त की एक-एक बूंद, मांस की एक-एक बोटी, चेहरे का नूर, वक्षस्थल की विशालता, जोरों का अट्टहास, चेहरे की मुस्कराहट आंखों की छेड़खानियां, और आवाज की वक्तृता, बुलन्दी, जोश खरोश और जगमगाहट।

– पर मुझे प्रसन्नता है, कि यह सब कुर्बानी शिष्यों के लिये दी है, और जिन्दगी के अंतिम क्षण तक इन दियों को जलाये रखने के लिये कुर्बानी देता रहूंगा, क्योंकि आप सब मेरे ही प्राणांश हैं।

—●—

प्रेम पंथ अति कठिन है

● **आपका व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य और शानदार है, चौड़े कन्धे, विशाल समुद्र की तरह वक्षस्थल, आजानु, गौर वर्णीय भुजाएं, तेजस्वी मुख मण्डल और दैदीप्यमान चेहरा, और उस पर एक ही बार में सम्मोहित सी कर देने वाली मुस्कराहट.... मुझे कहने के लिए क्षमा करें, मैं आप से रश्क करने लगी हूं ...।**

– रश्क मुझसे नहीं, मेरी देह से भी नहीं, रश्क तो तुम्हें मेरे प्राणों से करना चाहिए, शरीर तो क्षणभंगुर, नाशवान है, तुम्हारा मेरा संबंध देहगत है ही नहीं, प्राणगत है, गुरू और शिष्य का संबंध बहुत गहरा होता है, जहां देह का विसर्जन हो जाता है, जहां केवल प्राणतत्व ही जाग्रत रहते हैं।

– और जो प्राण तत्व जाग्रत होता हैं, जो गुरू चैतन्य और जागरूक होता है, जो गुरू ब्रह्म से साक्षात्कार कर चुका होता है, जिसने ब्रह्म को पहिचान लिया, उसका बाहरी शरीर भी अपने आप आकर्षक चुम्बकीय और दैदीप्यमान हो जाता है, क्योंकि उसका रोम-रोम जाग्रत होता है, क्योंकि उसके शरीर का अणु-अणु चैतन्य होता है, क्योंकि उसके सारे व्यक्तित्व में ब्रह्मत्व समाया हुआ होता है, और यह ब्रह्मत्व ही आकर्षक, सुन्दर और चित्ताकर्षक होता है, उससे रश्क होना स्वाभाविक है।

– पर इस रश्क में वासना की दुर्गन्ध नहीं होती, इस प्रेम में घटियापन या ओछापन नहीं होता, इसमें किसी प्रकार की कमजोरी नहीं होती, क्योंकि वह इन सब से ऊपर उठ चुका होता है, क्योंकि वह साधारण पुरुष नहीं होता, वह ब्रह्मत्व से स्निग्ध होता है, वह चैतन्यता से परिपूर्ण होता है।

– और इस पृथ्वी पर ऐसे व्यक्तित्व कभी-कभी ही जन्म लेते हैं, इस प्रकार के व्यक्तित्व पुरुष नहीं 'पुरुषोत्तम' होते हैं, श्रीकृष्ण होते हैं, बुद्ध होते हैं, चैतन्य होते हैं, महावीर होते हैं, शंकराचार्य होते हैं, ऐसे व्यक्तित्व से ही मानवता जगमगाती है, ऐसे व्यक्तित्व से ही पृथ्वी गरिमामय बनती है, ऐसे व्यक्तित्व से ही प्रकाश की, ब्रह्मत्व की किरणें प्रस्फुटित होती हैं, ऐसे व्यक्ति ही सही अर्थों में जागरूक और चैतन्य होते हैं।

– और जब कभी तुम्हारे जीवन में संयोग से कभी ऐसे व्यक्तित्व टकरा जांय, तो कस कर उनके पांव पकड़ लेना, हिचकिचाना मत, रुकना मत, सोच-विचार में समय मत गंवाना, समा जाना उसके प्राणों में, डूब जाना उसके व्यक्तित्व में, धन्य हो जाओगी तुम, अहोभाग होगा तुम्हारा।

मैं कहता अंखियन की देखी

● **गुरुवर ! कुछ समझ में नहीं आता, कि हम आपको क्या कहें, ज्योतिषी, आयुर्वेदज्ञ, कर्मकाण्डी, संस्कृतज्ञ, वैद्य, प्रोफेसर, गुरुदेव, विद्रोही .... क्या ....क्या, क्योंकि हमें प्रवचनों में नित नये स्वरूप के दर्शन होते हैं, जिस विषय पर भी बोलते हैं, धारा-प्रवाह, पूर्ण, सटीक, प्रामाणिक, और हम इन रूपों में से कौन सा रूप आपका समझें ?**

- ये सभी विशेषण मेरे लिए अधूरे हैं, अपूर्ण हैं, मैं किसी एक ही घाट पर बंधा हुआ नहीं रहा हूं, मैंने जीवन के प्रत्येक रंग को परखा है, प्रत्येक प्रकार के शास्त्र, दर्शन, मीमांसा, वेद, कर्मकाण्ड का गहराई के साथ अध्ययन किया है, और लगभग सभी उपनिषदों को हृदयंगम किया है।

- इसलिए जब मैं किसी विषय पर बोलने लगता हूं, तो उसके लिये मुझे कोई तैयारी नहीं करनी पड़ती, कोई पोथी नहीं पढ़नी पड़ती, उससे संबंधित विषय का अध्ययन नहीं करना पड़ता, बोलना शुरू करता हूं, और 'पिन पाइण्ट' उस विषय पर अबाध, अजस्र गति से बोलता चला जाता हूं।

- इसलिए जिस विषय को भी स्पर्श करता हूं, उसे पूर्णता के साथ सम्पन्न करता हूं, इसलिए तुम्हारे दिये हुए ये सभी विशेषण मेरे लिये अधूरे से हैं, अपूर्ण से हैं, कोई एक विशेषण मेरे पूरे व्यक्तित्व को उभार कर स्पष्ट नहीं कर पाता।

- हां ! मैं झुक नहीं सकता, पाखण्ड के सामने नतमस्तक नहीं हो सकता, गिड़गिड़ा नहीं सकता, सड़ी-गली मान्यताओं को गले के नीचे उतार नहीं सकता, अन्ध विश्वास और मान्यताओं पर मैं कस कर प्रहार करता हूं, जिससे तथाकथित धर्म के ठेकेदार, महन्त तिलमिला जाते हैं, उन्हें मुझसे भय लगने लगता है, और इस प्रकार मैं अपने शत्रुओं की संख्या में और वृद्धि कर लेता हूं।

- और यह मेरा स्वभाव है, सन्यास को मैंने वास्तविक गरिमा दी, गृहस्थ को मैंने पूर्णता दी, जीवन को मैंने संवारने की कला सिखाई, और रूढ़ियों पर मैंने वज्र की तरह प्रहार किया, और इसीलिए मैं निखिलेश्वरानंद हूं, और यह मेरा सर्वाधिक प्रामाणिक स्वरूप है।

हंस बिन मानसरोवर सूना

● **पूज्य गुरुदेव ! मैंने 'सिद्धाश्रम वाणी' में पढ़ा था, कि आपने मृतप्राय: सिद्धाश्रम को जीवन्त, मनोरम और अद्वितीय बना दिया, पूरा का पूरा विशेषांक ही इन तथ्यों पर था, क्या आप कुछ स्पष्ट करने की कृपा करेंगे?**

– 'सिद्धाश्रम वाणी' एक अद्वितीय देवत्व पत्रिका है, जो पूरी की पूरी सिद्धाश्रम की उपलब्धियों और वहां होने वाले नित्य नवीन शोधों पर आधारित है

– सिद्धाश्रम इस पृथ्वी का आध्यात्मिक स्वर्ग है, तपस्या की तीर्थ स्थली है, जीवित जाग्रत योगियों की उपलब्धि है, जहां हजारों मील लम्बे आश्रम में सैकड़ों-हजारों सन्यासी, योगी साधनारत हैं, उच्चकोटि की साधनाएं, दुर्लभ और अद्वितीय साधनाएं, गोपनीय और महत्वपूर्ण साधनाएं।

– जहां पहुंचना प्रत्येक सन्यासी का स्वप्न है, सन्यासी के मन के कोने में कहीं न कहीं यह इच्छा अवश्य दबी रहती है, कि वह इस जीवन में ही एक बार स शरीर सिद्धाश्रम पहुंच जाय, एक बार वहां की धूल को ललाट पर तिलक की तरह लगा ले, एक बार उस अमृतमय साधक स्थली में योगियों को इन आंखों से निहार ले।

– पर यह अत्यन्त कठिन है, कठिन नहीं, अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि सिद्धाश्रम में प्रवेश अत्यधिक दुष्कर और दुर्लभ है, इन्द्रलोक या स्वर्ग के सिंहासन पर बैठना तो फिर भी सरल है, पर सिद्धाश्रम में प्रवेश अत्यधिक दुष्कर है।

– और सुगम भी, यदि आपने साधनाएं की है, यदि आपने सिद्धियों को हस्तगत किया है, यदि आपने उच्चकोटि की सिद्धियों को प्राप्त किया है, यदि आपने उच्चकोटि की सिद्धियों को वश में किया है, और साथ ही साथ आप पर गुरू की अपूर्व कृपा और आशीर्वाद है, तो आप तुरन्त बिना हिचकिचाहट के एक क्षण का भी बिलम्ब किये बिना सिद्धाश्रम में प्रवेश पा सकते हैं।

– जहां हजारों वर्ष की आयु प्राप्त योगी आज भी स शरीर विद्यमान हैं, जहां श्रीकृष्ण, द्रोण, कृपाचार्य, शंकराचार्य, गोरखनाथ, विशुद्धानंद जी आज भी स शरीर विचरण करते देखे जा सकते हैं।

– और जब मैंने उसमें प्रवेश किया, तब वह निष्प्राणवत् था, मैं उसमें उमंग, चेतना, हलचल ला सका, तो यह सौभाग्य की बात है, और इस पर मुझे गर्व है।

—●—

निखिलेश्वरं.....निखिलेश्वरं

● मेरी कुछ दिनों पूर्व हिमालय के सर्वमान्य सौ वर्षों से भी ज्यादा उम्र के योगी गणेशानन्द जी से भेंट हुई थी, और उन्होंने निखिलेश्वरानन्द जी के बारे में जिन आह्लादकारक पंक्तियों में चर्चा की थी, वे रोमांचक थीं, प्रशंसनीय थीं, नवीन थीं, पर आप तो मौन साधे बैठे हैं, स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के बारे में कुछ कहते ही नहीं, कुछ प्रकाश डालिये न!

– गणेशानन्द जी सन्यासियों में श्रेष्ठ, वीतरागी एवं परमहंस हैं, जो कि कई वर्षों से निराहार रह कर साधना की उस स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं, जो अपने आप में अद्वितीय हैं, और बहुत ही कम योगियों को सुलभ होती है।

– निखिलेश्वरानन्द के रूप में उनसे मेरी भेंट हुई थी, और संभवतः वे लगभग ढाई-तीन साल तक मेरे सानिध्य में रह कर उन्होंने कुछ विशिष्ट साधनाएं सम्पन्न की थी।

– और निखिलेश्वरानंद के बारे में क्या कहूं, उनकी कहानियां उनकी घटनाएं और उनके प्रसंग तो हिमालय के चप्पे-चप्पे पर विद्यमान हैं, हिमालय का प्रत्येक कंकर उनकी घटनाओं और सिद्धियों से वाकिफ हैं, हिमालय की प्रत्येक कन्दरा उनके जीवन की साधनाओं की साक्षी है, हिमालय के चप्पे-चप्पे पर उनके तथ्य, उनके चिन्तन और सिद्धियां महिमा मंडित है।

– क्योंकि उन्होंने हिमालय को गरिमा दी, हिमालय के रूखे-सूखे सन्यासियों को चेतना दी, हिमालय के योगियों को उनके गौरव से परिचित कराया, हिमालय के लुप्त गिरि शृंगों को ढूंढ निकाला, हिमालय की वेगवती नदियों के उद्गम स्थलों को विश्व के सामने रखा, और उन स्थापनाओं को मान्यता दी, जो योगियों की धरोहर है, उस प्रतिष्ठा को प्रदान किया, जो हिमालय के लिये अनिवार्य हैं, भारत की उन प्राचीन सिद्धियों को नवीनता के साथ उजागर किया, जो लुप्तप्राय हो गई थीं, उन वनस्पतियों से विश्व को परिचित कराया, जो केवल धन्वन्तरी के ग्रन्थों में ही कैद बन कर रह गई थी।

– और उस निखिलेश्वरानंद का विशाल समुद्रवत् वक्षस्थल, आजानु बलिष्ठ बांहें, भव्य और तेजस्वी मुख मण्डल, लहराती हुई जटा, दैदीप्यमान नेत्र, तेजस्वी और तपस्या से दमकते हुए दृग-युग्म, भेदती हुई सी आंखें, और बलिष्ठ हिमालयवत सुडौल गौर वर्ण शरीर, जो सिद्धियों का आगार था, साधनाओं की तपस्थली था, ऊंचे से ऊंचा योगी जिनके चरणरज प्राप्त कर अपने आप को धन्य-धन्य अनुभव करता था।

– और क्या कहूं — हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।

जो देख्यो सो सांच

● **प्रभुवर ! मैंने आपके कई प्रवचन सुने और, सुनते-सुनते खो जाती हूं, कहीं दूर . . . बहुत दूर . . . और मैं देखती हूं, कि चन्द्रमा की चांदनी है, यमुना किनारे रासलीला चल रही है, और मैं एक गोपी बनी उस रासलीला में उन्मत्तता से नृत्य कर रही हूं, करती जा रही हूं. . . करती जा रही हूं कि हठात् तन्द्रा टूट जाती है, और देखती हूं, कि आप सामने बैठे प्रवचन कर रहे हैं, ऐसा मैं कई बार देख चुकी हूं, प्रभु यह सत्य है, या वह सत्य।**

– यह भी सत्य है, और वह भी सत्य है, और तुम मुझे प्रवचन करते हुए देख रही हो, और तुम श्रोता बनी हुई सुन रही हो, यह सत्य है, द्वापर युग में तुम उन्मत्त गोपी थी, और बांसुरी की धुन पर थिरक उठती थी, यह भी सत्य है, और यह भी काल का ही एक खण्ड है, जो तुम वर्तमान में देख रही हो।

– और यह भी मैं साफ-साफ देख रहा हूं, कि तुमने रासलीला में भाग लिया था, उन्मत्त होकर, दीवानगी की हद से, प्रेम की पराकाष्ठा से, स्नेह की पूर्णता से और प्रिय में पूर्ण रूप से विसर्जित होती हुई, लीन होती हुई।

– पर तुम्हें वापिस जन्म लेना पड़ा, क्योंकि तुम्हारे अन्दर की ईर्ष्या और अहं गला नहीं था, तुम्हारे मन के किसी कोने में यह कुंठा व्याप्त थी कि श्रीकृष्ण तो राधा को बहुत अधिक चाह रहे हैं, वे तो राधा के अत्यन्त प्रिय हैं, वे तो राधा में पूरी तरह से समाये हुए हैं, और मैं राधा के मुकाबले में श्रीकृष्ण के उतने निकट नहीं हूं, और इस कुंठा ने तुम्हें बार-बार जन्म लेने को विवश किया।

– हर बार जन्म लेकर अपने प्रिय से मिली, और थोड़ा 'अहं' गला पर फिर भी कुछ अहं रहा और फिर जन्म लेना पड़ा और इसीलिए बार-बार जन्म लेने को विवश होना पड़ा, पूर्ण रूप से प्रिय के प्राणों में समा नहीं सकी, जन्म-मरण के बंधन से मुक्त नहीं हो सकी।

– पर अब ... अब और जन्म नहीं लेना है, इस बार पूरी तरह से अहं को समाप्त कर प्रिय में विसर्जित हो जाना है, लीन हो जाना है, ब्रह्म से एकाकार हो जाना है।

फिर छूम छनन पाजेब बजी

- **मैंने एक बंगाली पुस्तक में पढ़ा था, कि आप पहले व्यक्तित्व थे, जिसने सिद्धाश्रम की व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किया, रूखेपन के स्थान पर सरसता फैलाई, साधना विधियों को आसान किया और मुख्य-मुख्य पर्वों पर गन्धर्व संगीत, देव संगीत एवं अप्सराओं के नृत्य प्रारम्भ करने की परम्परा प्रक्रिया प्रारंभ की, यह सब सन्यास की मर्यादा के विपरीत नहीं हैं ?**

– शायद तुमने सन्यास की परिभाषा ही नहीं समझी, मात्र भगवे कपड़े पहिन कर भटकने वालों को सन्यासी नहीं कहते, सन्यासी का तात्पर्य है, जो मुक्त हो, समस्त बंधनों से स्वतंत्र हो, मोह-माया, राग-द्वेष से परे हो, जिसकी आंख स्वच्छ हो, जो सभी प्रकार से पूर्णता की ओर अग्रसर हो।

–सन्यासी के लिए भगवे कपड़े अनिवार्य नहीं है, अगर भगवे वस्त्र हैं, और स्वार्थी है, या लालची है, तो वह फिर हमसे भी गया गुजरा व्यक्ति है, जिसने भगवे तो पहन लिए, लेकिन मन पर, नजर पर नियंत्रण नहीं रख सका, वह सन्यासी कैसा ?

– फिर महावीर ने तो जीवन भर भगवे कपड़े नहीं पहिने, वह सन्यासी नहीं थे, बुद्ध ने भगवे कपड़ों को तवज्जह नहीं दी, तो फिर वे भी सन्यासी नहीं थे, तुम्हारी सन्यास की मान्यताएं ही अधूरी और खंडित है।

– और अप्सराओं के नृत्य या स्त्रियों को देख लेने से सन्यस्त कहां से खंडित हो गया, तुम्हारे धर्म ग्रन्थों ने स्त्रियों को अछूत समझ लिया और तुमने स्त्री को देखना ही पाप समझ लिया, और जिन्होंने ये धर्म ग्रन्थ लिखे, वे स्त्रियों से प्रताड़ित थे, और उनकी कुंठा बाहिर निकल कर व्यक्त हुई, मनुस्मृति के रचयिता मनु अपनी पत्नी ईड़ा से बहुत दुःखी थे और स्त्रियों को समाज के योग्य ही नहीं समझा, तुलसी की पत्नी रत्नावली ने तुलसी को फटकारा था, इसलिए उन्होने रामचरित मानस में लिख दिया **'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी"**, कबीर अपनी पत्नी से दुःखी थे और उसने नारी को "जहर की पुड़िया" बता दिया।

– ये सब कायर थे, बुझदिल थे, पत्नियों से संत्रस्त और प्रताड़ित थे, इसलिए इनकी लेखनी ने उल्टा-सुल्टा लिखा, अगर स्त्री को देख कर तुम्हारे चित्त पर विकार आ गया, तो फिर तुम सन्यासी कैसे स्त्री के सन्दर्भ से तुम विचलित हो गये, फिर तुम योगी कैसे ? श्रीकृष्ण तो हजारों गोपियों से प्रेम करके भी "योगीराज" कहलाये, स्त्रियां, साधिकाएं, शिष्याएं, जीवन और साधना की पूरक हैं बाधक नहीं।

● **आपने कहा, कि जब आपने सिद्धाश्रम में प्रवेश लिया तो वह निष्प्राण सा था, और आपने उसमें उमंग, चेतना, उत्साह भरा, कैसे वह निष्प्राणवत् था, और अब उसमें क्या जीवन्तता है, सुनने की इच्छा होने लगी है ।**

– निष्प्राण का तात्पर्य, वह सिद्ध पीठ तो था, उसमें उच्चकोटि के योगी एवं परमहंस तपस्वी तो साधनारत थे, श्रीकृष्ण और शंकर, गोरख जैसे योगी भी विचरण कर रहे थे, पर था सुनसान, कोई हलचल नहीं, कोई चेतना नहीं, कोई खिलखिलाहट, मुस्कराहट नहीं, ठूंठ की तरह बैठे साधनारत थे ।

– और सिद्धयोगा झील, जिसका स्वच्छ निर्मल जल तो देवताओं तक ने सराहा है, जिसमें स्नान करने से एक क्षण में ही शरीर के समस्त रोग समाप्त हो कर वह निरोग, स्वस्थ एवं तन्दुरुस्त हो जाता है, उसका कायाकल्प हो जाता है ।

– क्योंकि सिद्धाश्रम में वृद्धता नहीं है, बुढ़ापा नहीं है, मृत्यु नहीं है, वहां फूल मुरझाते नहीं हैं, वहां चौबीसों घण्टे दूधिया रोशनी बिखरी रहती है, हर क्षण वसन्त मुस्कराता रहता है, हर पल कामदेव प्रत्यंचा चढ़ाये तन-मन को बेधता रहता है, स्वर्ग की दुर्लभ चिड़ियां चहचहाती रहती हैं, पर इतना सब कुछ होने पर भी चहल-पहल, हंसी-मजाक, मुस्कराहट, प्रसन्नता, पुलक, सलज्जता कुछ भी नहीं थी, ऐसा लगता था, कि जैसे लोहे के कठोर सिकंजे में हर योगी कैद हो, अनुशासन के निर्मम बन्धन में बंधा हुआ हो ।

– और यह मुझे सह्य नहीं था, मैं ऐसे दमघोंटू वातावरण में जीवित नहीं रह सकता था, मेरे मन में सिद्धाश्रम की ऐसी कल्पना ही नहीं थी, और मैंने उस ठहरे हुए जल में हिलोर पैदा की, उस रुकी हुई हवा में सरसराहट दी, सन्यासिनियों को मुस्कराहट दी, साधिकाओं को खिलखिलाहट दी, नौजवानों को अट्टहास सिखाया, और सिद्धाश्रम दिवस या अन्य महत्वपूर्ण पर्वों पर अप्सराओं – रंभा, मेनका, उर्वसी के नृत्य प्रारम्भ करवाये, गंधर्वों के कंठों से गीत उच्चरित करवाये, सिद्धयोगा झील में साधक साधिकाओं को तैरने की प्रेरणा दी, आज्ञा दी, क्रिया दी ।

– और इन सबसे बूढ़े खूसट योगियों के अहं को चोट पहुंची, उन्होंने कहा, सिद्धाश्रम में खिलखिलाहट ओछापन है, अप्सराओं के नृत्य गलत हैं, यह आपका विद्रोह है ।

– और मैंने कहा, कि यह विद्रोह है, तो इसका मुझे गर्व है, और सिद्धाश्रम में तपस्या साधना के अलावा यह सब भी होगा ही ।

– और विद्रोही तो मैं रहा भी हूं और हूं भी ।

सिद्धि साध्ये सतामस्तु

● प्रिय गुरुदेव ! कृपया दो टूक शब्दों में साफ-साफ उत्तर देने की कृपा करें, कि क्या साधना करने से सिद्धि तुरन्त मिल जाती है, वे कौन से तथ्य या युक्तियां हैं, जिन्हें अपनाने से शीघ्र और निश्चित सिद्धि प्राप्त हो ही।

– साधना है ही इसलिए कि उसके माध्यम से सिद्धियां प्राप्त हो, और यह भी निश्चित है, कि इसके लिए दो या तीन बार साधना करने या मंत्र जप करने की आवश्यकता नहीं, पहली ही बार में देवी या देवता जिसकी साधना हम कर रहे हैं, उसे प्रत्यक्ष उपस्थित होना ही पड़ता है और मनोवांछित वरदान देना ही पड़ता है।

– और मैंने शब्द प्रयोग किया है, कि सिद्धि देनी ही पड़ती है, मैंने शब्द किया है, कि दर्शन देना हो पड़ता है और इसमें भी कोई दो राय नहीं, कि जिस उद्देश्य के लिए हम साधना कर रहे हैं, वह सिद्धि प्राप्त होती ही है, उस देवी देवताओं में हिम्मत नहीं होती, कि वे मना कर दें।

– पर इसके लिए यह जरूरी है, कि साधक या शिष्य सर्व प्रथम गुरू में और साधना सामग्री में आस्था उत्पन्न करे, गुरू की सेवा में रहे, क्योंकि स्रोत तो वही है, जो कुछ प्राप्त होना है, वह तो वहीं से प्राप्त होता है।

– अतः शिष्य पूर्ण रूप से नमन हो जाय, जिस प्रकार फलयुक्त डाली नमित हो जाती है, झुक जाती है, उसी प्रकार शिष्य भी गुरू चरणों में विनीत हो कर झुक जाय, नमित हो जाय, पूर्ण रूप से समर्पित हो जाय, अपने पास कुछ भी बचा कर न रखे, अपना अस्तित्व भी नहीं।

– जब बीज मिट्टी में मिल जाता है, तभी वह आगे चल कर पूर्ण छायादार वृक्ष बनता है, मैं भी अपने जीवन में बीज था, मिट्टी में मिल गया, अपने आप का विसर्जन कर दिया और आज छायादार सघन वृक्ष बन गया।

– तुम्हें भी ऐसा ही होना है, बीज बन कर धरती में विलीन हो जाना है, मिला देना है अपने आपको, तब जो साधनात्मक पेड़ उगेगा, वह हजारों-लाखों लोगों को छाया प्रदान कर सकेगा।

– तुम्हें गुरू रूपी मिट्टी में विसर्जित होना है, आज ही, अभी।

मानुष थोड़े घाट कई

● आपने अपने प्रवचनों में साधना पर सर्वाधिक बल दिया, और मानव कल्याण का हेतु बताया, पर धर्म के बारे मे आपने कभी एक शब्द भी नहीं कहा, क्या इसका कोई कारण है ?

– धर्म अपने आप में कोई अलग सत्ता नहीं है, धर्म के मूल में कोई चिन्तन, कोई विचार, कोई धारणा, कोई युक्ति नहीं है, वह एक जड़ बन कर रह गया है।

– क्योंकि धर्म ने अपने सोचने विचारने की शक्ति खो दी, धर्म के बारे में नया कुछ भी नहीं लिखा जा रहा है, आपका उस पर कोई अधिकार नहीं रहा, वह आप पर हावी हो गया है, और जो हावी हो जाता है, वह सड़ जाता है, दुर्गन्धयुक्त हो जाता है।

– धर्म का हाल भी यही रहा, तुमने हिन्दू के घर जन्म लिया, हिन्दू बन गये, तुम्हें पूछने का अधिकार ही नहीं रहा, कि मैं हिन्दू ही क्यों, अन्य क्यों नहीं....नहीं ऐसा कहते ही तुम अधर्मी कहलाने लगोगे, तुमने भूल चूक से जैनी के घर में जन्म ले लिया, और जैनी बन गये, मुसलमान के घर में जन्म लिया और मुसलमान बन गये।

– फिर तुम बदल नही सकते, न विचारों को, न आस्थाओं को, और न धर्म को, जो ठप्पा तुम पर लग गया, उसे तुम हटा भी नहीं सकते, क्योंकि धर्म ने सोचने विचारने की शक्ति खो दी है, तर्क क्रिया समाप्त कर दी है, परिवर्तन के परिणाम को नकार दिया है।

– और फिर हिन्दू हो कर के भी तुमने कुछ किया नहीं. उसके बारे में कोई अध्ययन, मनन, चिन्तन . कुछ भी नहीं, एक "हिन्दू" शब्द को पकड़ लिया, उठते-बैठते, सोते-जागते हिन्दू। हिन्दू नहीं हो गया, बिछौना हो गया, ओढ़ने की रजाई हो गई, उन्हें इस संबंध में कोई ज्ञान, कोई चेतना नहीं है, उन्होंने तो हिन्दू रूपी गाय की पूंछ पकड़ ली है, जिसके भरोसे दाल-रोटी सेंकते हुए वैतरणी पार करनी है।

– धर्म तो धारण करने की, जीवन में एकाकार करने का रस है, चीखने चिल्लाने या रहने का उपक्रम नहीं।

—●—

ध्यान क्रिया

● **यह ध्यान क्रिया या ध्यान योग क्या है, इसका जीवन में कितना और क्या महत्व है ?**

– ध्यान क्रिया से आदमी को अपने अस्तित्व का बोध हो जाता है, उसे यह ज्ञान हो जाता है, कि जितना ही ज्यादा अर्थ के पीछे भागोगे, उतनी ही तृष्णाएं परेशान करती रहेंगी, उतनी ही दूषित भावनाएं उभरती रहेंगी ।

– पर इस दुनियां को छोड़ भी तो नहीं सकते, क्योंकि हम और हमारा सारा अस्तित्व समाज पर, परिवार पर टिका हुआ है, अतः इन लोगों के बीच ही रहना पड़ेगा, जो कुंठित वासनाओं के शिकार हैं, जो दमित इच्छाओं के दास हैं, जो धन के पीछे पागलों की तरह बेतहासा भाग रहे हैं ।

– और इसके लिए सन्यास लेने की जरूरत नहीं है, इसके लिए केवल दिन में दो घण्टे सन्यस्त होने की जरूरत है, दो घण्टे सन्यास लेने की आवश्यकता है, मात्र दो घण्टे आप लगभग वीतरागी की तरह रहें, किसी से कोई सम्पर्क नहीं, कोई संबंध नहीं, एकान्त में बैठ कर पूर्ण रूप से मन की गहराइयों में उतर जाना, और अन्दर... अन्दर ...बहुत गहरे अन्दर.... ।

– और यहीं पर तुम्हें पूर्ण अखण्ड आनन्द का द्वार खुला मिलेगा, तुम्हें पूर्ण शांति सी अनुभव होगी, ऐसा लगेगा कि जैसे सारे बंधन कट गये हों, पूर्णतः निर्विकार, निश्चिन्त और निरापद हो गये हो, मन अत्यन्त हल्का हो गया हो, चित्त पर से सारा बोझ उतर गया हो ।

– और यही ध्यान क्रिया है, जो मन की गहराइयों में डुबो कर पूर्ण आनन्द की अनुभूति करा दे, ब्रह्म से साक्षात्कार करा दे, जीवन को पूर्णत्व दे दे ।

– और यही तो जीवन का उद्देश्य है ।

—8—

गर्भ-ज्ञान देगो सरल

● **आपने अपने प्रवचन में एक बार रहस्योद्घाटन किया था, कि वर्तमान समय में भी गर्भ स्थित बालक को शिक्षा दी जा सकती है, और आपने इससे सम्बन्धित एक-दो प्रयोग भी किये थे, और वे पूर्णतः सफल रहे थे, किस विधि से ऐसा सम्भव है, कि बालक को गर्भ में ही विद्वान, गणितज्ञ, वैज्ञानिक या भौतिक विज्ञान विद् बना सके, नर्तक या संगीतज्ञ बना सके, क्या विधि है इसकी ?**

– हमारा सारा पौराणिक साहित्य इन तथ्यों से भरा हुआ है, कि जब बालक मां के गर्भ में होता है, तब उसे जो शिक्षा दी जाती है, वह शिक्षा पूर्णता एवं शीघ्रता से स्वीकार कर लेता है, बाहिर आने पर जिस ज्ञान को सीखने में वर्षों लग सकते हैं, वही ज्ञान गर्भ में रह कर बालक कुछ ही दिनों में सीख सकता है ।

– और अब तो पश्चिम में "वेचाल्यून" यन्त्र बन गया है, जिसके माध्यम से बालक के हृदय की धड़कन, रक्तचाप और उसकी मां से बातचीत होती है, वह सुनी जा सकती है, इस यन्त्र के माध्यम से बालक को जो दिशा निर्देश दिया गया, बालक ने पूर्णता से पालन किया ।

– ठीक इसी प्रकार "वैचाक्षी संस्कार" के माध्यम से मां के गर्भ में स्थित बालक को ज्ञान दिया जा सकता है, जो शिक्षा, चेतना और गूढ़ रहस्य समझाने होते हैं, वे समझाये जा सकते हैं, और वे जटिल सूत्र बालक का उर्वर मस्तिष्क तुरन्त स्वीकार कर लेता है, और वह स्थायी होता है ।

– और कोई ज्ञान नहीं, जो उसे नहीं दिया जा सके, किसी विषय को आसानी और सरलता से उसे समझाया, सिखाया जा सकता है, और ऐसे प्रयोग शिष्याओं के गर्भ पर उनके पति की आज्ञा से सम्पन्न किये गये, और आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए ।

– और यह प्रयोग क्रांतिकारी है, नित्य बालक को जब वह गर्भ में हो, तो उसकी मां को "गुरू प्रवचन के टेप" आडियो रेकार्डर से सुनाने ही ही चाहिये, जिससे बालक का ब्रह्मत्व स्वतः जाग्रत हो सकेगा, और यह सर्वोत्तम उपाय है ।

॥ शिष्य ॥

शिष्य पंथ अति कठिन है

● **प्रभु, कृपया संक्षेप में स्पष्ट करें, कि शिष्य के कर्तव्य क्या हैं ?**

– शिष्य का तात्पर्य, जो इस आध्यात्मिकता साधना की पगडंडी पर पहली-पहली बार चलना सीखा है, शिष्य का तात्पर्य है, गुरू की उंगली पकड़ कर रास्ता पकड़ ले, आगे बढ़े ।

– पर संसार में सर्वाधिक कठिन क्रिया शिष्य बनने में ही है, और सर्वाधिक आसान भी, शिष्य का तात्पर्य है, जिसका अपना कुछ भी न हो, अपना तन-मन सब कुछ गुरू चरणों, में सौंप दिया हो, अपने पास कुछ भी बचा कर न रक्खा हो ।

– क्योंकि तुम बचाओगे क्या? क्रोध, झूठ, छल, अहंकार, गंदगी, वासना और अहं. इसके अलावा तुम्हारे पास पूंजी है भी क्या, और यह सब भी गुरू चरणों में समर्पित कर देना है, और बिल्कुल कोरा कागज बन जाता है, जिस पर गुरू स्पष्टता के साथ लिख सके, जिस पर चेतना की पंक्तियां अंकित कर सके, जिस पर प्राणों, का समर्पण स्पष्ट कर सके ।

– और शिष्य का तात्पर्य है, गुरू के नजदीक जा कर उसके प्राणों में पूर्ण रूप से विसर्जित हो जाय, जिस प्रकार सुगन्ध हवा में फैल जाती है, जिस प्रकार धड़कन प्राणों से एकाकार हो जाती है ।

– और तब शिष्य गुरू के मुंह से निकले शब्दों में तैरने का अभ्यास करता है, तब शिष्य उस भवसागर में डुबकी लगाता हुआ पार उतर जाता है, और तब गुरू का आज्ञाचक्र पर स्पर्श पा कर अमृतकुण्ड का द्वार खोल देता है, और गुरू के पास जो अमृतकुण्ड है, उसमें से अबाध गति से एक-एक बूंद पीता चला जाता है, और पूर्ण रूप से अमृतत्व प्राप्त कर लेता है, पूर्ण रूप से आनन्द को पूरे शरीर में भर लेता है, पूर्ण रूप से उत्सवमय समर्पण मय बन जाता है ।

—●—

प्रेम न हाट बिकाय

- **आप अपने प्रवचनों में कई बार प्रेम के बारे में बोले, और प्रेम को जीवन में सर्वोच्च स्थान दिया, क्या वास्तव में ही प्रेम सर्वोपरि है ?**

– तुम्हारे हृदय में प्रेम का जो स्वरूप है, वह घिसा-पिटा है, तुमने या इस दुनियां ने अभी प्रेम को पहिचाना ही नहीं, प्रेम का स्वाद चखा ही नहीं, प्रेम के महत्व को समझा ही नहीं ।

– तुमने तो प्रेम, स्त्री और पुरुष के संबंधों को समझ लिया, तुमने प्रेम को विषय वासना की गठरी में बांध कर रख दिया, प्रेम शब्द जो परमात्मा का प्रतीक था, उसे घटिया और घृणित बना दिया ।

– नहीं, तुम्हारी प्रेम की परिभाषाएं अधूरी हैं, प्रेम तो सही अर्थों में प्राकृतिक सत्य है, मानव जीवन का सत्व है, निचोड़ है, जीवन की सारभूत पूंजी है, सुन्दरता का आगार है, प्रभु का मानव को दिया हुआ श्रेष्ठतम वरदान है ।

– क्योंकि प्रेम को देखा नहीं जा सकता, क्या हवा को हम देख सकते हैं, नहीं, मात्र अनुभव कर सकते हैं, इसी प्रकार प्रेम भी अनुभूति है, है, अनुभव करने का चिन्तन है, 'गूंगे के री सरकरा' की तरह आस्वादन की प्रक्रिया है, उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसे दिखाया नहीं जा सकता, और न उसका प्रदर्शन किया जा सकता है ।

– क्योंकि प्रेम अक्षुण्ण है, वह मरता नहीं, प्रेमी मर सकता है, पर प्रेम नहीं मर सकता, क्योंकि वह सृजनात्मक प्रक्रिया है, क्योंकि वह ईश्वरीय सृष्टि है, क्योंकि वह मानवता का मूल है, और जब तक प्रेम है, तभी तक यह संसार गतिशील है, जिस दिन मानव मन से प्रम मर जायेगा, उसी दिन मानवता भी समाप्त हो जायेगी, उसी दिन विश्व भी अन्धकार में खो जायेगा, उसी दिन दुनियां एक निरर्थक, खोखली, ढकोसला बन कर रह जायेगी ।

– इसलिए जिसने जीवन में प्रेम नहीं किया, मन में प्रेम की भीनी-भीनी खुशबू को एहसास नहीं किया, मन में प्रेम की चिनगारी नहीं फूटी, प्रेम की रोशनी में आंखें नहीं खोली, प्रेम का आस्वादन नहीं किया, वह सत्य से वंचित हो गया, साधना एवं सिद्धि से गौण हो गया, ईश्वर से परे हट गया ।

– उसका जीवन एक ढोंग, पाखंड, खोखला सा निर्जीव बन कर रह गया ।

देख कबीरा रोया

● **प्रभुवर! आप वर्तमान युग में साधनाओं और सिद्धियों के अक्षय भण्डार हैं, आपकी टक्कर का व्यक्तित्व इस पूरे क्षेत्र में, वर्तमान विश्व में शायद कोई नहीं है, पर आपने कभी हमें चमत्कार नहीं दिखाया, कभी सिद्धियां दिखाई नहीं, कभी दिखाइये न, जिससे हमें भरोसा आ सके ।**

– मुझे शर्म आती है, कि मैं अपनी जबान से तुम्हें शिष्य कहूं, या तुम मुझे गुरू कहो ।

– तुम्हें गुरू नहीं चाहिए, जो तुम्हें मन के अंदर उतार सके, जो तुम्हारे बंद दरवाजों को खोल सके, जो तुम्हारे प्राणों में हलचल पैदा कर सके, जो तुम्हें ब्रह्म से साक्षात्कार करा सके ।

– तुम्हें तो मदारी चाहिये, जो डुग-डुगी बजा कर लोगों की भीड़ एकत्र करे, तुम्हारा गुरू तो संपेरा होना चाहिए, जो सांप की पूंछ पकड़ कर उसे उल्टा लटका कर तमाशा दिखा सके, तुम्हें चाहिए, एक ढोंगी, पाखंडी साधु, जो हवा में हाथ लहरा कर भभूत निकाल सके, एक दो इलायची के दाने, निकाल कर तुम्हारे मुंह में दे सके, और तुम्हें नकली चमत्कार दिखा सके ।

– तुम गलत स्थान पर आ गये हो, यह मदारियों का अड्डा नहीं है, यह संपेरा का बिम्बीघर नहीं है, यहां तमासे नहीं दिखाये जाते, तुम्हें चाहिए जादूगर, तुम्हें चाहिए हाथ की सफाई दिखाने वाले, तुम्हें चाहिए ऐसे नाटकबाज, जो तुम्हारे ललाट पर हाथ रख कर कुण्डलिनी जाग्रत करने का ढोंग कर सके, तुम्हें चाहिए चालाक, मक्कार, धूर्त और ठग गुरू ।

– हकीकत में तुम सही स्थान पर नहीं हो, मैं ऐसे लोगों, पाखण्डियों धूर्तों पर तो प्रहार करता हूं, उनकी पोल खोलता हूं, धर्म के नाम पर धंधा करने वालों का पर्दाफास करता हूं ।

– तुम सही अर्थों में शिष्य हो, तो साधक बन सकोगे, और साधक होने पर सिद्धियां स्वतः तुम्हारे गले में जयमाला डालने के लिए आतुर रहेंगी ।

—●—
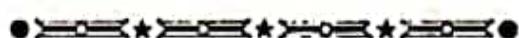
● **गुरुवर ! आपने अपने प्रवचन में कहा था, कि पूर्ण पुरुष तो इक्कीस महीने गर्भ में रह कर उत्पन्न होने के बाद ही संभव है ? क्या गर्भ में इक्कीस महीने बालक का रहना संभव है ?**

– वास्तविकता तो यही है, कि बालक की पूर्ण परिपक्वता इक्कीस महीने गर्भ में रहने पर ही संभव है, और जितने भी उच्चकोटि के ऋषि भारतवर्ष में अवतरित हुए, उनका गर्भकाल पूरे इक्कीस महीने का रहा ।

– तभी तो वे पूरे परिपक्व बने, तभी तो वे पूर्ण ऋषित्व ले कर अवतरित हुए, तभी तो वे अपने जीवन काल में ही ब्रह्मत्व से साक्षात्कार कर पाये।

– पर बाद में माताओं की धारण क्षमता कमजोर हो गई, उनमें वह ताकत ही नहीं रही, कि बालक को इक्कीस महीने गर्भ में रख कर उसे परिपक्वता दे सकें, उसे पूर्णता दे सकें, उसे ऋषित्व एवं ब्रह्मत्व दे सकें ।

– और इस दृष्टि से आज की जो पीढ़ी है, आज के युग के जो उत्पन्न बालक हैं, वे एक प्रकार से गर्भपात सदृश हैं, क्योंकि जो पूरे समय तक गर्भ में नहीं रह सकता, और समय से पूर्व ही जन्म ले लेता है, उसे गर्भपात के अलावा और क्या संज्ञा दी जा सकती है ?

– इसीलिए इन बालकों—पुरुषों का जन्म तो हुआ, मस्तिष्क का विकास तो संभव हो सका, पर ब्रह्मत्व का विकास नहीं कर पाये, कुण्डलिनी का उत्थान नहीं कर पाये, सहस्रार के समस्त हजार-हजार द्वारों को उजागर नहीं कर पाये, और ये सभी पुरुष और बालक अधूरे से ही रहे ।

– पर इक्कीस महीने का गर्भ आज भी संभव है, यदि दो महीने का गर्भ हो जाय और तभी "गुरू" "स्थिति प्रज्ञता" दीक्षा एवं प्रयोग सम्पन्न करा दे, तो निश्चय ही माताएं बालक को इक्कीस महीने तक गर्भ में रख सकती हैं ।

– और एक बार फिर वशिष्ठ, विश्वामित्र, कृष्ण, राम जैसे युगावतार उत्पन्न हो सकते हैं ।

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है

- **प्रभु आप हमारे गुरुदेव हैं, और यह हमारा सौभाग्य है, कि साधनाओं और सिद्धियों के बारे में इतना कुछ कहा और बताया कि हम धन्य हो उठे, आपने बताया कि शिष्य को गुरु के प्राणों में समा जाना चाहिए, पर आप एकबारगी ही अपने प्राणों में हमें समाहित क्यों नहीं कर लेते, एक ही झटके में समाप्त क्यों नहीं कर लेते, धीरे-धीरे हलाल क्यों करते हैं ?**

– यह संभव ही नहीं है, यह संभव हो भी नहीं सकता, क्योंकि इसमें कोई दो राय नहीं कि साधना का प्रारम्भ गुरू से होता है और साधना की अंतिम स्थिति गुरू के प्राणों में समाहित होने से होती है।

– पर यह गुरू के प्राणों में समाहित होना शिष्य का कार्य है, गुरू ने तो अपना हृदय, अपने प्राण पूरी तरह से खोल कर के रखे हैं, तुम्हारा जितना अहंकार गलता जायेगा, उतनी ही मात्रा में तुम गुरू के प्राणों में समाहित होते जाओगे।

– इसलिए यह समाहित होने की प्रक्रिया तुम्हारे हाथ में है, गुरू तो मानसरोवर की तरह तुम्हारे सामने निश्चित रूप से फैला हुआ है, तुम्हें ही इसमें अपना घट डुबोना है।

– पर यह उतना ही तो डूबेगा जितना तुम अपना अहं गला सकोगे, डाली उतनी ही तो झुकेगी, जितनी फलदार होगी।

– पर यह निश्चय है कि जब घट ने मानसरोवर में समा जाने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी है, तो पूर्ण रूप से समायेगा ही, यह अलग बात है, कि इसमें कितना समय लगता है ?

– पर इसमें विलम्ब करना उचित नहीं, पहले से ही बहुत ज्यादा विलम्ब हो चुका है, एकबारगी ही जोर देकर पूरा प्रयत्न करना है, और अपने आपको गुरू के प्राणों में समाहित कर देना है।

– और तभी तुम्हें अपने सामने साक्षात् ब्रह्मत्व के जाज्वल्यमान दर्शन सुलभ हो सकेंगे, तभी तुम पूर्ण हो सकोगे, तभी कबीर के शब्दों में— "फूटा कुम्भ जल जल ही समाना यह तथ कह्या गियानी"।

प्रेम बिना नर सूना

● आप गुरू और शिष्य की बात करते करते प्रेम की बात करने लग जाते हैं, क्या इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है ?

– प्रेम और शिष्य दोनों एक ही शब्द के दो अर्थ हैं, शिष्य तभी बन सकता है, जब उसमें गुरू का प्रेम प्रवाहित होता है, शिष्य तभी तो बन सकता है, जब उसकी धड़कनों में गुरू की धड़कनें समाई हुई हों, जब शिष्य का प्रेम गुरू के लिये अत्यन्त सघन और गहरा हो जाता है तब वह गुरू के प्राणों में समा जाने की क्रिया प्रारम्भ करता है ।

– और प्रेम कभी मरता नहीं, वह तो शाश्वत है, अमर है, ठीक इसी प्रकार गुरू और शिष्य के संबंध मर नही सकते, क्योंकि ये संबंध कई-कई जन्मों के हैं, इसलिए जब मैं शिष्य की बात करता हूं, तो अपने आप प्रेम बीच में आ जाता है ।

– और प्रेम के द्वारा ही तुम्हारी धड़कनें गुरू की धड़कनों से मिल सकेगी, बाकी सब कुछ तो इस दुनिया में आसानी से प्राप्त हो सकता है, पर सद्गुरू प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ घटना है, और इससे भी आश्चर्य-जनक घटना है, गुरू के प्राणों में समा जाने की क्रिया, और जब ऐसा होता है, तब अपने आप पूर्णता प्राप्त हो जाती है, जब ऐसा होता है, तब अपने आप साधना सिद्ध हो जाती है, जब ऐसा होता है, तब अपने आप सिद्धियां हाथ बांधे हुए सामने खड़ी हो जाती है ।

– तुम्हें बस इतना ही करना है, कि प्रेम को जीवित जाग्रत बनाये रखना है, और प्रेम की धड़कनों को गुरू की धड़कनों में समाहित कर देना है, और यही साधना है, यही सिद्धि है, और यही सफलता है ।

ज्यूं मछली बिनु नीर

● मैं क्या करूं, जिससे कि आपका प्रेम और गहरा हो जाए, जल्दी से जल्दी आप मेरे प्राणों में समा जाएं, मैं उन्मुक्त हो उठूं और पूरी तरह से अपने आपको मिटा दूं ।

– इसमें कुछ करने की जरूरत नहीं है, चुपचाप शान्त एकान्त स्थल पर आंखें बन्द कर बैठ जाना है, और मुझे अपने प्राणों में उतारने की क्रिया कर देनी है ।

– और इसमें भी तुम्हे कुछ नहीं करना है, तुम्हें तो केवल अपने प्राणों से आवाज देनी है, मैं अपने आप आ जाऊंगा और तुम्हारे प्राणों में समा जाऊंगा, इसके लिये कोई युक्ति, कोई तरकीब, कोई पेचीदापन है ही नहीं ।

– इतना ही है, कि तुम अपना हृदय खुला रख सको, ऐसा न हो कि गुरू आवे, और द्वार वन्द देख कर वापिस लौट जाय, ऐसा न हो कि वासंती हवा बहे और तुम कमरा बन्द किये हुए ही बैठी रहो, ऐसा न हो कि गुलाब का फूल झूम-झूम कर मुस्कराए और तुम आंख बन्द किये ही सोती रहो ।

– तुम्हें जागना है, सचेत रहना है, हर क्षण प्रतीक्षा करनी है, हर क्षण प्राणों को खुला रखना है, हर क्षण आंखें पगडंडी पर बिछी हुई रहें, कभी भी आराध्य आ सकते हैं, क्योंकि वे बिना आहट किये चुपचाप आते हैं, और प्राणों में उतर जाते हैं ।

– राधा का उदाहरण हमारे सामने है, मीरा का साक्षीभूत हमारे सामने है, और यदि तुममें प्रेम की गहराई बनी रही, तो जल्दी ही तुम उस स्थिति को प्राप्त कर लोगी, जो कि तुम चाहती हो ।

घाट भुलाना बाट बिनु

- मैं एक अजीब सी हालत में से गुजर रहा हूं, हर क्षण आपका ध्यान मेरी आंखों के सामने बना रहता है और काम करते-करते ही मैं खो जाता हूं, भली प्रकार से काम भी नहीं कर पाता, और मेरी आंखें छलछला उठती हैं, मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि मैं आपको कैसे भुलाऊं ?

– मैं भुलाने लायक व्यक्तित्व ही नहीं हूं, मैं तो याद करने लायक, प्राणों में बसा लेने लायक व्यक्तित्व हूं, क्योंकि तुम्हारे और मेरे संबंध दो-चार वर्षों के नहीं हैं ये कई-कई वर्षों के हैं।

– और इतने वर्षों के अटूट संबंधों को तुम तोड़ भी नहीं सकते, क्योंकि किसी न किसी जन्म में मैंने तुमसे वायदा किया होगा, कि मैं तुम्हें पूर्णत्व तक पहुंचा दूंगा, किसी न किसी जन्म में मैंने तुम्हें यह आश्वासन दिया होगा, कि मैं तुम्हारे प्राणतत्व जाग्रत कर दूंगा।

– और मैंने इस जन्म में यही किया है, मैंने इस जन्म में तुम्हारे हृदय के द्वार को खटखटाया है, मैंने तुम्हारे दिल के किवाड़ों पर दस्तक दी है, उन प्राणों को जगाने का प्रयत्न किया है, जिससे कि उसमें ताजी हवा जा सके, जिससे कि उसमें चेतना पैदा हो सके, जिससे कि उसमें मेरे प्राणों की महक भर सके।

– और मैंने यही किया है, और जब तुम्हारे प्राण मुझे देखते हैं, पर तुम्हारी देह उस समय किसी और कार्य में लगी होती है और यह असंतुलन तुम्हारी आखों में आंसू ले आते हैं, तुम्हारी आंखें छलछला उठती हैं, और मिलने के लिए व्याकुल हो उठती हैं।

– इस लिए यह प्रयत्न ही व्यर्थ है, कि तुम अपने प्राणों पर अंकित मेरी तस्वीर मिटा सकोगे, मैं मिटने के लिए नहीं हूं, तुम्हारे अहं को, तुम्हारे देहतत्व को मिटाने के लिए आया हूं, और इस बार निश्चय ही तुम्हें अपने प्राणों में समाहित कर दूंगा, यह मेरा वायदा है।

अमरित बूंद पड़ी तन मन पर

● **कभी तो मैं जब प्रातःकाल उठती हूं, तो प्रभात सुनहरा लगता है, चिड़ियों की चहक मनोहारी प्रतीत होती है, कि आप जैसे आस-पास ही विचरण कर रहे हों, आपकी सुगन्ध से तन मन प्राण सुवासित हो उठते हैं, पर कभी यह सब निस्सार सा लगता है, और ऐसा लगता है, कि जैसे आप बहुत दूर चले गये हों, ऐसा क्यों लगता है ?**

- तुम्हारा प्रश्न तुम्हारे प्राणों का उत्तर है, जब तुम प्राणगत अवस्था में होती हो तब तुम्हें मैं अपने पास ही अनुभव होता हूं, क्योंकि मेरा और तुम्हारा संबंध पूर्ण रूप से प्राणगत हैं, तुमने अपने प्राणों में मुझे समाहित कर रखा है, इसीलिए तुम जब उस अवस्था में होती हो तब मुझे अत्यन्त निकट अनुभव करती हो, और मेरी सुवास से भर उठती हो।

- संतों ने इसे उन्मनी अवस्था कहा है, जब व्यक्ति अपने आप में ही खो जाता है, अपने आप में ही गुनगुनाने लगता है, अपने आप से ही बातें करने लगता है, यही श्रेष्ठ सिद्धि है, थोड़ी ही दूरी पर ब्रह्मत्व रह गया है, बस एक छलांग लगानी है, और ब्रह्मत्व में समा जाना है।

- पर जब तुम देहगत अवस्था में आती हो, तब चित्त व्याकुल हो उठता है, न प्रभात अच्छा लगता है, और न चिड़ियों का चहचहाना, उस समय जीवन के सारे कार्य-कलाप ओछे और बेमानी से लगते हैं, क्यों कि तुमने प्राणगत अवस्था का आस्वादन किया है, उसके सामने देह गत अवस्था बेस्वाद, बेजान और व्यर्थ है।

- इसलिए भय लाने की जरूरत नहीं है, तुम जहां कहीं पर भी हो, मैं तो हर क्षण तुम्हारे साथ ही हूं, केवल प्राणों से आवाज देने की जरूरत है।

- और यह आवाज स्वतः मेरी उपस्थिति का आभास दे देगी, यह आवाज स्वतः तुम्हें आनन्द में सराबोर कर देगी, इस आवाज से तुम्हारे तन और तुम्हारे प्राण स्वतः महकने लग जायेंगे।

पूर्ण पंथ नहि कठिन है

● क्या साधना के मार्ग से इस जीवन में पूर्णता और सफलता प्राप्त हो सकेगी ?

– इस जीवन की बात तो बहुत लम्बी है, मैं तो समझता हूं, कि यह घटना तुम्हारे जीवन में किसी भी समय घट सकती है, मैं तुम्हें कई वर्षों से, कई जन्मों से पहिचानता हूं, और तुम्हारा हाथ पकड़ कर इस पगडंडी पर मेरे साथ बराबर आगे बढ़ाते हुए यहां तक लाया हूं ।

– अब तो एक छलांग लगाने की देर है, अब तो मन में थोड़ी हिम्मत और साहस लाने की जरूरत है, अब तो एकबारगी निश्चय कर लेने की जरूरत है ।

– क्योंकि अंतिम अवस्था में जाने से पूर्व पूरी ताकत के साथ छलांग लगानी पड़ती है, सब कुछ छोड़ छाड़ कर विसर्जित होने की क्रिया करनी पड़ती है, और तुम्हें अब इसके लिए तैयार रहना है ।

– और यह पूर्णता, यह सफलता कुछ ही हाथ की दूरी पर है, अगले कदम पर ही यह सफलता तुम्हारा इन्तजार कर रही है, क्योंकि जिसे तुम नहीं देख पा रहे हो, उसे मैं देख रहा हूं ।

– मैं देख रहा हूं, कि सफलता और सिद्धियां जयमाला लिये मुस्कराती हुई तुम्हारे सामने ही तो खड़ी है, तुम्हारे गले में वरमाला डालने के लिए, तुम्हारी बनने के लिए, तुमसे एकाकार होने के लिए ।

– इसलिए पूरे जीवन की बात करने की जरूरत नहीं है, अब तो कुछ क्षणों की बात है, तुम्हें छलांग लगानी है, और अब तक तुमने जो मेरा हाथ पकड़ा था, हाथ छोड़ कर मुझमें लीन हो जाना है, विसर्जित हो जाना है, अपने आप को मिटा देना है ।

– बाकी सब कुछ मैं अपने आप कर लूंगा, यह मेरा वायदा है ।

—●—

विरहिन दियरा प्राण का

● **गुरुदेव, आप मेरे हृदय में इतने अधिक समा गये हैं, कि अब जुदाई सहन नहीं होती, कभी ऐसा क्षण न आ जाय, कि मुझे अलग होना पड़े, इस बात का ख्याल रखना।**

– ख्याल मुझे नहीं रखना है, तुम्हें रखना है, क्योंकि जो एक बार प्राणों में समा जाता है, उसे निकालने की कोई युक्ति कोई तरकीब है ही नहीं।

– जितना ही ज्यादा हम उसे भुलाने की कोशिश करते हैं, वह उतना ही ज्यादा याद आता रहता है, जितना ही ज्यादा हम उसे दूर भगाने की कोशिश करते हैं, वह उतना ही ज्यादा निकट आ जाता है।

– इसलिए यह बात तो बेमानी है, कि जो प्राणों में समा जाय, वह अलग हो सकता है, देहगत संबंध अलग हो सकते हैं, उसमें स्वार्थ की बदबू आ सकती है, उसमें झूठ और कपट का व्यापार चल सकता है, पर जहां प्राणों का संबंध है, वहां पर न झूठ होता है, और न छल होता है, वहां तो केवल एक याद रहती है, जो पूरे शरीर को आनंद से भिगाये रखती है।

– और वह प्राणों पर, चिन्तन पर, विचार पर, भावनाओं पर और जीवन पर छा जाता है, आंखों में आंसू बन कर छलकने लग जाता है, होंठों पर मुस्कराहट बन कर थिरकने लग जाता है।

– तुम्हारा मेरा प्राणगत संबंध कई-कई जन्मों का है, इसलिए यह संबंध न मैं तोड़ सकता हूं, और न तुम तोड़ सकती हो, यह कोई मामूली संबंध नहीं है, यह तो सत्य के संबंध हैं, आत्मा के संबंध हैं, प्राणों के संबंध हैं।

– और यह संबंध उच्छ्वास से, आहों से, आसुओं से, बेचैनी से, तड़फ से, और याद से ही दृढ़ होते हैं, और यह सब कुछ तो हो ही रहा है, फिर चिन्ता किस बात की ?

● **गुरुदेव कई स्थानों पर पढ़ा है कि आप ने हिमालय में कई वर्षों तक साधनाएं और तपस्याएं की, किस उम्र में आप हिमालय में रहे ?**

– आयु दो प्रकार की होती है, देहगत आयु और प्राणगत आयु ।

– देहगत आयु तो मां के गर्भ से जन्म ले कर श्मशान तक की यात्रा या मृत्यु तक को ही कहते हैं, पर प्राणगत आयु जन्म-जन्म से बराबर चलती रहती है, और यह प्राणगत आयु कई कई सौ वर्षों की हो जाती है ।

– जो केवल देह गत जीवन में ही होते हैं, उन्हें इस जीवन की घटनाए ही याद रहती हैं, परन्तु जो ब्रह्म तत्व को पहिचान लेते हैं, जो प्राण तत्व में जाग्रत होते हैं, उन्हें अपना पिछला जीवन भी याद रहता है, और उससे पिछला जीवन भी ।

– और इस प्रकार वह पिछले जीवन के कई कई जन्मों का साक्षी होता है, और उसे जीवन में किये गये कर्म, कार्य, साधनाएं और तपस्या के बारे में भी पूरी पूरी जानकारी रहती है ।

– और मैं प्राणगत जीवन में हिमालय में कई वर्षों तक साधनाएं और तपस्याएं की, देहगत आयु भले ही मेरी न्यून हो, पर प्राणगत आयु अत्यन्त विस्तृत और अद्वितीय उपलब्धियों से परिपूर्ण है ।

- इसीलिए मुझे प्राणगत आयु श्रृंखला के उन क्षणों, दिनों या काल खण्ड का भी भली भांति स्मरण है, जब मैं वर्षों तक हिमालय में रहा, उच्चकोटि की साधनाएं की, ब्रह्म से साक्षात्कार किया, और जीवन की पूर्णता प्राप्त की ।

- और यह श्रृंखला टूटती नहीं है, पिछले जीवन की कड़ी और घटनाएं वर्तमान जीवन की कड़ी से जुड़ी होती है, और मैं तुम्हें भी इसी प्रकार प्राणगत जीवन में ले जाकर अटूट श्रृंखला का साक्षीभूत बना देना चाहता हूं ।

बाधाओं के अलावा उनके हाथ कुछ नहीं लगा और वे अपने साथ कफन का टुकड़ा तक नहीं ले जा सके, और यदि तुम भी इसी प्रकार किनारे पर खड़े ही रहे, तो तुम भी अपने साथ कुछ भी ले जा नहीं सकोगे।

यही समय है, चैलेन्ज लेने का, यही समय है आगे बढ़ने का, क्योंकि इतिहास इस बात का साक्षी है, कि जिन्होंने चैलेन्ज लिया, उन्होंने "ब्रह्म" को प्राप्त किया, वशिष्ठ ने चुनौती का सामना किया, और ब्रह्मर्षि कहलाये, राधा ने अपने तेवर अलग से बनाये, और आत्म से पूर्ण साक्षात्कार किया, मीरा ने लोक लाज छोड़कर पैरों में घुंघरू बांधकर सड़कों पर साधुओं के बीच मगन हो गयी, तो वह ब्रह्म में पूर्ण रूप से समाने में समर्थ हो सकी, कबीर, फकीर की तरह घर से बाहर निकल पड़ा, तभी उसे चारों तरफ ब्रह्म की लाली दिखाई दी, सूर, तुलसी, रैदास, नानक, ने भी अपने जीवन में इसी चैलेन्ज को उठाया, और जीवन का उद्देश्य पूरा किया, जीवन में वह सब कुछ पाया जो जीवन का लक्ष्य होता है, जो जीवन का उद्देश्य होता है, जो जीवन का धर्म होता है।

पर इसके लिए मिटना जरूरी है, यदि बीज जमीन में मिलकर मिटे ही नहीं तो छायादार वृक्ष नहीं बन सकता, यदि वह किनारे पर खड़ा सोचे कि जमीन में मिल जाने के बाद पेड़ बनूंगा भी या नहीं, तो वह बीज कभी भी फलदार वृक्ष नहीं बन सकता, क्योंकि कुछ बनने के लिए मिटना जरूरी है, मैं भी जीवन में मिटा, और छायादार वृक्ष बन सका, जिसकी छाया तले तुम ब्रह्म से साक्षात्कार करने के लिए अग्रसर हो, आतुर हो, आगे बढ़ने की क्षमता लिये हुए हो।

इसीलिये मैं कहता हूं, कि तुम्हारी मंजिल दूर नहीं है, यह मंजिल साधना की पगडंडियों पर से हो कर ही आगे बढ़ती है, इस रास्ते के मार्ग में कई छायादार पेड़ मिलेंगे, ध्यान के, धारणा के, योग के, समाधि के, प्रेम के और मस्ती के, इन सभी छायादार पेड़ों के नीचे से होते हुए, तुम्हें आगे बढ़ना है, परन्तु रास्ता नहीं छोड़ना है, साधना का जो रास्ता मैंने तुम्हें दिया है, उस रास्ते से एक इन्च भी इधर-उधर नहीं सरकना है क्योंकि यह रास्ता निश्चित रूप से ब्रह्म से साक्षात्कार कराता है, निश्चय ही यह रास्ता ईश्वर में विलीन होता है, निश्चय ही यह रास्ता बूंद को समुद्र में विसर्जित करने की क्षमता रखता है।

और फिर तुम्हें, चिन्ता और भय, परेशानी और बाधा रहे ही क्यों? मैं हर क्षण प्रति पल इस रास्ते पर तुम्हारे साथ हूं, तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में होना चाहिए, तुम्हें मुझ पर विश्वास होना चाहिए, तुम्हारे पांव मेरा अनुसरण करते रहें, जल्दी ही तुम उस ईश्वरीय सत्ता में विलीन हो सकोगे, जिसको वेदों में पूर्णत्व कहा है, जरूर तुम उन देवताओं के, ब्रह्म के पूर्ण रूप से दर्शन कर सकोगे जिन्हें शास्त्रों में नेति-नेति कहा है।

बढ़ो, और आगे बढ़ो, प्रतिपल अग्रसर बनो, मैं प्रतिक्षण तुम्हारे साथ हूं, क्योंकि मैं तुम्हारा मार्ग दर्शक, पथ प्रदर्शक और गुरू हूं।

—लेखक